

# धर्मायण

## विषय - सूची

धर्म का शून्य-स्तर

भवनाथ झा

शास्त्राध्ययन-परम्परा का संरक्षण

आचार्य किशोर कुणाल

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में धर्मसंवाहक सन्तों की भूमिका

विद्यावाचस्पति डा. श्रीरंजन सूरिदेव

ऋक्-संहिता में सूर्य

डॉ. किरण कुमारी शर्मा

वैष्णव सन्त तुलसीदास की अन्तर्यात्रा (गतांक से आगे)

डॉ. राजेश्वर नारायण सिन्हा

शिवताण्डव स्तोत्र (हिन्दी पद्यानुवाद)

अनु. गोपाल भारतीय

चरैवेति

प्रो. चन्द्रशेखर द्विवेदी 'भारद्वाज'

श्रीगुप्तधाम की यात्रा

श्री घनश्याम दास 'हंस'

राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप

डा. जय नन्दन पाण्डेय

हिन्दी धार्मिक फिल्मों का स्वर्णिम अतीत

श्री ओम प्रकाश सिन्हा

भारतीय वाङ्मय में माँ का स्वरूप

श्री युगल किशोर प्रसाद

ज्योतिष की दृष्टि से कैंसर का विश्लेषण

डा. राजनाथ झा

एवं अन्य स्थायी स्तम्भ- प्रवचन, देवस्तुति, मन्दिर समाचार-परिक्रमा,

संस्कृत-शिक्षा आदि

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोध परक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।



धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना  
की पत्रिका

अंक : 86

अप्रैल-जून, 2015

वैशाख-आषाढ़, 2072

**प्रधान सम्पादक**

भवनाथ झा

**सहायक सम्पादक**

श्री सुरेशचन्द्र मिश्र

**अतिथि सम्पादक**

श्री मगनदेव नारायण सिंह

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो. काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

अक्षर संयोजक- दिनकर कुमार

पत्र-सम्पर्क:

**धर्मायण,**

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-800001

दूरभाष - 0612-3223293

E-mail: mahavirmandir@gmail.com

Web: www.mahavirmandirpatna.org

**मूल्य : पन्द्रह रुपये**

आवरण चित्र

नटराज शिव

## पाठकीय प्रतिक्रिया

### कोना-कोना मिठास

सम्पादक महोदय,

नमस्कार।

मैं 'धर्मायण' का सतत अध्येता रहा हूँ। परन्तु, बहुत दिनों तक 'धर्मायण' की बेकरार गुमसुमी, मुझे बेहद परेशान करती रही। मैं बार-बार चाह रहा था कि सम्पादक-मंडल से बात करूँ और अपने हृदय की भड़ास, अथवा मनोव्यथा सुनाकर दर्द को कुछ कम करूँ। परन्तु, आज मैं एक सुखद आश्चर्य से भर गया, जब धर्मायण का 85वाँ अंक मेरे हाथ आया और वह भी नई साज-सज्जा और सुरुचिपूर्ण स्तम्भों का कसाव एवं नई बुनावट-बनावट के साथ।

आज मैं अत्यन्त आस्वस्ति से लबरेज हूँ कि मुझे, मेरा खोया संसार मिल गया है। अतीत का दुखद दर्द भूल गया हूँ और सुखद सच आखों के आगे उतर रहा है।

श्री सुरेश चन्द्र मिश्र लिखित 'हनुमत्-स्तुति' नई पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा है, जिसे आज जन मानस प्रायः भूलने के कगार पर है। सात भगण एवं दो गुरु की बुनावट में कसा यह मत्तगयंद छंद, सचमुच अपनी प्रांजलता में लाजबाव है। कवि अपने भाव को छंदोमयी भाषा में वाणी देने में अत्यन्त समर्थ है। पर, मुझे यह भी लगता है कि कवि ने शब्द तोलने में ज्यादा श्रम किया है, और एक भक्त की स्पष्ट ऋजुता में कम। पं. भवनाथ झा लिखित 'देवी पूजन में सर्वोत्तम नैवेद्य' एक पूजनोत्सुक देवी भक्त को वह सभी सामग्री का सम्यक् ज्ञान देता है, पूजा काल में जिसको उसे सर्वापेक्षा अधिक आवश्यकता होती है। अपनी बातों को धर्मग्रंथों की प्रामाणिकता से सुसज्जित-संवलित करना लेखक की सर्वाधिक विशेषता है। डॉ. राजेश्वर नारायण सिन्हा का 'वैष्णव संत तुलसी की अन्तर्यात्रा'



शीर्षक निबंध लेखक की लेखनी की प्रौढ़ता का परिचायक है। भाषा की बुनावट थोड़ी जटिल है, फिर भी विषय के हिसाब से उचित ही है। डॉ. मोना बाला लिखित 'रामायण कालीन राज व्यवस्था-तत्कालीन व्यवस्था व्यवस्था

की जानकारी देने में पूर्णतः सफल है। भाषा सरल एवं सुबोध है। 'तुलसी' का युग बोध एवं समाजिक आदर्श' नई सूझ-बूझ के साथ लिखा गया एक उत्कृष्ट निबंध है। राकेश चन्द्र मिश्र 'विराट' की भाषा प्रभावोत्पादिका है। अतः भाव संवहन में पूर्णतः समर्थ है। 'गर्भस्थ परीक्षित पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा' में डॉ. जयनन्दन पाण्डेय ने महाभारत के सच को बहुशः उजागर किया है। हालाँकि, कथ्य का यत्र-यत्र अनपेक्षित बढ़ाव भी देखने को मिलता है। डॉ. मगन देव नारायण सिंह का 'रुद्राक्ष सम्बन्धी लेख श्लाघनीय है। पं. (डा.) राजनाथ झा की ज्यौतिष दृष्टि बड़ी अनोखी लगती है। आगे भी इनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। डॉ. राम विलास चौधरी एवं डॉ. नीरज कुमार का लेख भी अच्छा लगा। अस्तु, मेरी ओर से सब को धन्यवाद। आशा है, आगे भी यह धर्मायण अबाध निकलता रहे, इसी आशा के साथ साधुवाद।

श्री लक्ष्मीकान्त "वैद्य"

शिक्षक, डी.ए.बी. पब्लिक स्कूल,  
बेगूसराय (बिहार)

### पाठकों से निवेदन

'धर्मायण' के पाठकों से निवेदन है कि उन्हें यह पत्रिका कैसी लगी, वे इस पत्रिका में और क्या चाहते हैं यह हमें अवश्य लिखें। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। इससे हमें आगे अंकों की रूपरेखा के निर्धारण में सहायता मिलेगी। पाठकगण अपना मन्तव्य हमें डाक द्वारा अथवा महावीर मन्दिर के ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर भेज सकते हैं।

# नमसा विधेम

## श्रीजानकी-स्तुति

(मत्तगयंद छंद)



S II SII SII SII SII SII SII SS  
पूजन अर्चन चंदन वंदन, आज समर्पित राम प्रिया को।  
भू-दुहिता मिथिलेश सुता, बहिरन्तर साम्य सदा हृदया को।  
रक्षित जो वन मध्य अहा, पच पादप पूज्य महा निलया को।  
जान कपीश क्षुधाकुल पीड़ित, दे शुभ इंगित माँ सदया को।।

वारिधि सेतु बना किल कौतुक, राम जगत्पति माँ हित तेरे।  
नील नलांकित नाम सुपावन, पाहन प्लावित हैं तव प्रेरे।  
आ त्रिजटा करती कृप कीर्तन, अम्ब, भवत्हित साँझ-सकरे।  
रक्ष-प्रदेश किया द्रुत भस्मित, वानर राज पसार लंगूरे।।

वृक्ष अशोक अधः रख रावण, आप विपद नव बीज वपा था।  
वक्ष विशाल वसा निशि-वासर, दम्भ दिखा दनु-पुत्र दपा था।  
भेद हुआ जब ज्ञात सुधा का, नाभि विदार दशास्य दमा था।  
प्राण-पखेरु चला जब छोड़, तदा, मन में तव नाम जपा था।

है जननी तव कीर्ति पुरातन, मोदक दे, हनु को परखा था।  
लाख प्रयत्न कपीश किये पर, स्वाद न रंच पवा, न चखा था।  
हार हताश हुआ हत हिम्मत, ह्रास हठात हरीन्द्र लखा था।  
वारिधि लंधन, लंक दहावन, मे तव ही प्रभुता व पखा था।

दृष्टि वही, वह भाव भविष्य, वही अनमोल कृपा वर दे माँ।  
साहस, ओज, असीम गुणाकर, बुद्धि, विवेक दया कर दे माँ।  
मैं रत नित्य रहूँ पद माँ तव, काव्य कला कृति धी भर दे माँ।  
पाद सरोज पखार सकूँ, वह प्रेम-सुधा-रस-सागर दे माँ।



(श्री सुरेश चन्द्र मिश्र)



परमाचार्य उद्धव दासजी महाराज

“गीता के छठे अध्याय में अर्जुन ने बहुत व्यावहारिक प्रश्न किया है कि ईश्वर की शरण पाने के लिए अच्छे-अच्छे काम करता हुआ मनुष्य यदि बीच में ही मृत्यु प्राप्त कर ले तो इतने दिनों तक जो उसने अच्छे-अच्छे काम किये, वे बेकार हो जाएँगे? साथ ही, जिसका मन योग से डिग गया हो, योग करते-करते हट गया हो या किसी प्रकार सिद्धि तक योग पूरा न हो सका हो तो उसका क्या होता है? कहीं ऐसा तो नहीं कि वह परमात्मा को पाने के फेर में भटका हुआ बेसहारा मनुष्य छितराए हुए वादलों के समान परमात्मा से भी और संसार से भी जाता रहा हो। क्या उनकी स्थिति ऐसी हो जाएगी कि दुविधा में दोऊ गए, माया मिली न राम।

अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने समझाया कि हे अर्जुन! योग से डिग जाने पर भी जिसकी लगन बनी रहती है ऐसे मनुष्य को न तो इसी लोक में कोई कष्ट हो पाता है न परलोक में ही, क्योंकि वह मनुष्य सदा सबका भला करता रहता है। ऐसा पुण्यात्मा मनुष्य जिसका योग अधूरा रह जाता है, पूरा नहीं हो पाता है वह शरीर छोड़ने पर उन लोकों में जा पहुँचता है

जिनमें अच्छे (पुण्य) काम करनेवाले लोग पहुँचा करते हैं, और बहुत दिनों तक वहाँ रहकर वह अच्छे, भलाई के काम करनेवाले और पैसे वाले के घर में जन्म ग्रहण कर लेता है। या फिर किसी से भी लगाव न रखनेवाला ऐसा मनुष्य उन लोकों में न जाकर परमात्मा को जाननेवाले योगियों के घर आ जनमता है। पर यह भी समझ ले कि ऐसा जन्म भी इस संसार में विरले को ही मिल पाता है। ज्ञानियों के घर पहुँचकर उसमें अपने पिछले जन्म की बुद्धि के कारण सब कुछ अपने आप आ जाते हैं, किसी से सीखने नहीं पड़ते, जिससे वह फिर भगवान् को पाने के लिए जी-जान से जा जुटता है। संसार के सारे सुख भोगता हुआ भी वह पिछले जन्म के लगाव के सहारे संसार से मन हटाए रहता है। जैसे अजामिल हाथी पिछले जन्म में राजा था। उसे शाप के कारण हाथी के रूप में जन्म लेने पड़ा; किन्तु राजा के रूप में उसने अच्छे-अच्छे कार्य किये थे जिसका संस्कार पुनर्जन्म होने पर भी उसके साथ रहा। इसलिए जब उसे ग्राह ने पकड़ा तब उसकी पुकार सुनकर भगवान् पधारे और उसे भगवान् की शरण मिल गयी। इसलिए थोड़ा-सा जतन कर लेनेवाला योगी भी जब परमात्मा तक जा पहुँचता है, तब जिस मनुष्य ने अनेक जन्मों में अपना मन उजला किए रक्खा हो और बड़े धीरज और लगन से उसमें जी रमाकर बराबर लगा भी रहता हो, उसे तो परमात्मा और सबसे मुक्ति पा लेने में कुछ देर ही नहीं लगती। तपस्या करनेवालों, शास्त्र जाननेवालों और फल की इच्छा से काम करनेवालों से योगी ही कहीं बहुत बढ़कर होता है इसलिए फल पाने की बात मन से निकालकर कर्म में लगकर हमें कर्मयोगी बन जाना चाहिए।”

(दि0 8-07-07 को महावीर मन्दिर में प्रवचन करते हुए)



सम्पादक की लेखनी से

## धर्म का शून्य स्तर

भवनाथ झा



प्राचीन काल में धर्म के दो स्तर थे। प्रथम स्तर में अहिंसा, शौच, दम अस्तेय आदि दस थे, जिनका उल्लेख मनु ने “दशकं धर्मलक्षणम्” कहकर किया है। इसी के साथ माता-पिता की सेवा, परोपकार आदि परिवार और समाज के प्रति धर्म था। इन सबका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य था। एक प्रकार से यह शून्य स्तर का धर्म था, क्योंकि इनका पालन नहीं करने पर कोई व्यक्ति पापी की कोटि में गिना जाता था अर्थात् पैमाने पर वे ऋणात्मक हो जाते थे।

सनातन धर्म की मूल अवधारणा को समझने के लिए हमें इस ‘शून्य स्तर’ को समझना होगा जहाँ पहुँचने पर लोग न तो ‘पापी’ होते हैं, न पुण्य प्राप्त करते हैं। संसार के प्रत्येक धर्म में यह ‘शून्य स्तर’ एक समान है। इस स्तर पर पहुँचने के बाद ही हम ऊपर उठने के अधिकारी होते हैं। खाई में गिरा हुआ व्यक्ति समतल भूमि पर आने के बाद ही पेड़ पर चढ़ने लायक होता है। जब तक हम अपने आचरण से इस स्तर पर पहुँच नहीं जाते हैं तब तक इससे स्तर से ऊपर उठने की बात हम सोच भी नहीं सकते। अपने कर्तव्यों के द्वारा इस ‘शून्य स्तर’ को पाना सबसे कठिन कार्य है। चूँकि मानव मन में पानी की तरह नीचे की ओर बहने की ‘प्रवृत्ति’ है। आँखें हमेशा सुन्दर वस्तु देखना चाहती हैं। जिहा सुन्दर स्वाद

खोजती है, कान कर्णप्रिय स्वर खोजता है, निष्कर्षतः सभी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों की ओर भागती हैं। यहीं ‘प्रवृत्ति’ है। इसकी पूर्ति के लिए हम न्याय और अन्याय को भूल जाते हैं और उस ‘शून्य स्तर’ से नीचे गिर जाते हैं। फिर शुरू हो

जाती है ‘शून्य स्तर’ को पाने की जद्दोजहद। सनातन धर्म ने इस शून्य स्तर को पाने के लिए दस कार्य करने का निर्देश किया है—

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं  
शौचमिन्द्रियनिग्रहः।  
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो  
दशकं धर्मलक्षणम्॥**

ये सभी कर्म मनुष्य के वश में हैं। जैसे पहाड़ पर चढ़ने से पहले पर्वतारोही अपना बैग (Bag) तैयार करता है; रस्सी, कील, हथौड़ा, विशेष प्रकार का जूता, दस्ताना, भोजन सामग्री आदि इकट्ठा कर आगे की चढ़ाई की तैयारी करता है। वैसे ही धर्म की चढ़ाई के लिए हमें धैर्य, क्षमाः, दम, अस्तेय आदि उपकरणों की तैयारी कर लेनी चाहिए

अभी तक हमने धर्म के सर्वाधिक प्रचलित रूप पूजा, पाठ, जप, ध्यान की चर्चा तक नहीं की है, क्योंकि ये धर्म की अगली यात्रा की विधियाँ हैं। जबतक हम धर्म के ‘शून्य स्तर’ पर नहीं पहुँचते हैं; खाई से निकलकर समतल पर नहीं पहुँचते हैं, तबतक इन सबसे हमें कोई फायदा नहीं है। संसार के प्राचीन धर्मों की यही मान्यता है। चोरी नहीं

शास्त्र में  
मत-भिन्नता, खण्डन-मण्डन,  
पूर्व-पक्ष-उत्तर पक्ष ये सब  
उच्च-चिन्तन के उपादान हैं और  
वे सभी तत्त्वबोध के साधन  
हैं— वादे वादे जायते  
तत्त्वबोधः।

करना, सत्य बोलना, क्षमा करना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना हमारा कर्तव्य है, हम उसे कर सकते हैं तो फिर इसे किए बिना हम भगवान् को क्यों पुकारें। यह तो उस आलसी की कहानी हो गयी, जिसके मुँह पर एक कुत्ता पेशाब करता रहा और वह कुत्ते को भगाने के लिए अपने साथी को पुकारता रहा।

अभी तक यह स्पष्ट हो चुका है कि धर्म की पहली यात्रा 'शून्य स्तर' को पाने के लिए है। वह मनुष्य के वश की बात है, लौकिक उसका फल भी 'दृष्ट' है यानी दिखाई पड़ता है। भारत में जितने भी धार्मिक आन्दोलन हुए हैं सबके पीछे यही कारण है कि व्यवहार में, अतीत काल में मनुष्य पहली यात्रा पूरी किए बिना दूसरी चढ़ाई की बात करने लगे। फलतः यज्ञ, उपासना, व्रत, पूजा आदि की आलोचना भी हुई।

वेद ने दोनों स्तरों का विवेचन किया। यज्ञ का विधान तो किया किन्तु यज्ञ करने के लिए अधिकारी का भी निरूपण किया- शान्तो दान्तः शुद्धचित्तो यजेत। अलौकिक कर्म से पहले लौकिक कर्म करने का निर्देश किया। किन्तु अधिकांश लोग लौकिक कर्तव्य किये बिना 'अलौकिक' कर्म करते देखे गये। महावीर जैन और बुद्ध ने इसी विडम्बना पर गौर किया। उन्होंने देखा कि सामान्य जनता धर्म के 'शून्य स्तर' से भी काफी नीचे गहरी खाई में गिरी हुई है। उन्होंने लोगों को समतल पर लाने के लिए उपदेश किया। बौद्धों का हीनयान सनातन धर्म का पोषक था। इसलिए हमें लौकिक कर्तव्यों के सन्दर्भ में दोनों में कोई अन्तर नहीं दीखता। 'धम्मपद' में ऐसा कोई उपदेश नहीं है जो हमें सनातन धर्म में नहीं मिले।

'शून्य स्तर' से ऊपर की यात्रा वैदिक उपासना-पद्धति में है तो बौद्धों में महायान शाखा में है। इस स्तर पर विभिन्न धर्मों में आराध्य देव भलें भिन्न हों, किन्तु विधान में बहुत भिन्नता नहीं है।

आराध्य का ध्यान, उनका गुण-कीर्तन, उन्हें अपनी प्रिय वस्तु अर्पित करना, आराध्य का आवाहन करना, अपने कष्टों को दूर करने के लिए उनसे प्रार्थना करना- ये सब सामान्य बातें हैं जो उपासना के स्तर पर सभी धर्मों में समान हैं।

यदि हम धर्म के उपरि वर्णित दोनों स्तरों का नामकरण करना चाहें तो प्रथम स्तर को आचार और द्वितीय स्तर को उपासना कहेंगे और इन दोनों के बीच बिन्दु को शून्य कहेंगे।

'महाभाष्य' में पतंजलि (ई. पू. द्वितीय शती) ने आरम्भ में लिखा है:- "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।" यहाँ निष्कारण धर्म की बात है अर्थात् ऐसा कार्य जिससे कुछ भी प्राप्ति न हो, अकारण कार्य। सीधे शब्दों में छह अंग-शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्यौतिष के साथ चारों वेदों का अध्ययन ब्राह्मणों को करना ही चाहिए और इससे उन्हें 'पुण्य' भी नहीं मिलेगा। वास्तव में इतना अध्ययन ब्राह्मणों को केवल आचार और उपासना के बीच की बिन्दु 'शून्य स्तर' पर पहुँचायेगा। पतञ्जलि जैसे याज्ञिक, वैयाकरण एवं योगशास्त्र के प्रणेता ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए इतना कुछ कर डालने की बाध्यता का नियमन किया।

ब्राह्मणों ने इस 'शून्य स्तर' को पाने के लिए अपनी सारी ऊर्जा लगा दी जिससे उन्हें 'उपासना' का अधिकार मिला।

द्वितीय स्तर पर उपासना और 'ज्ञान' के बीच संघर्ष की कथा भी कम रोचक नहीं है। वैदिक साहित्य में उपनिषदों ने ज्ञान से आध्यात्मिक उन्नति की अवधारणा रखी और उपासना को निरर्थक माना। हलाँकि मूल वैदिक संहिता का स्वर है कि उपासना के बाद ज्ञान की बात करनी चाहिए, अतः यजुर्वेद के चालीस अध्यायों में अन्तिम अध्याय ज्ञानकाण्ड के रूप में ईशावास्योपनिषद् है।

याज्ञवल्क्य ने भी शतपथ ब्राह्मण के चौदहवें अध्याय में बृहदारण्यकोपनिषद् के रूप में ज्ञानकाण्ड की विवेचना की। उपासना और ज्ञान के बीच सम्बन्धों को लेकर अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय बने। इन दार्शनिक सम्प्रदायों ने भिन्न भिन्न दृष्टिकोण रखकर 'जगत्' की व्याख्या की। सर्वाधिक मतभेद इसी स्तर पर है।

आज अक्सर लोग समझते हैं कि बौद्ध, जैन एवं सनातन धर्म के बीच मतभेद हैं। वास्तव में यह मतभेद केवल दार्शनिक स्तर पर है। सनातनियों की विभिन्न दार्शनिक शाखाओं न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा-वेदान्त इन छह धाराओं में भी इसी प्रकार की मत-भिन्नता है। वेदान्त में भी द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत मत हैं, जिनमें परस्पर मतभेद हैं। शास्त्र में मत-भिन्नता, खण्डन-मण्डन, पूर्व-पक्ष, उत्तर-पक्ष- ये सब उच्च-चिन्तन के उपादान हैं और वे सभी तत्त्वबोध के साधन हैं- वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।

अक्सर हम भ्रमवश दो दार्शनिकों के बीच होनेवाले शास्त्रार्थ को शत्रुओं के बीच लड़ाई मान लेते हैं, और हार-जीत को लेकर एक 'इगो' (ego) पाल लेते हैं। हमें इससे ऊपर उठना होगा। मेरा ननिहाल बिट्टो गाँव है, जो मधुबनी जिला के सरिसब पाही के पास है। वहाँ आज से लगभग 250 वर्ष पूर्व दो सोदर भाइयों में से एक द्वैतवादी थे और दूसरे अद्वैतवादी। हमेशा घर में शास्त्रार्थ ही चलता रहता था। जहाँ उच्च चिन्तन होगा, वहाँ मतभेद होगा ही। ज्ञान के क्षेत्र में मतभेद का स्वागत होना चाहिए।

अब हम उपासना के स्तर पर मत-भिन्नता का विवेचन करें। ऋग्वेद के मन्त्रों में देवताओं की प्रार्थना की गयी है। प्रथम सूक्त में अग्नि की प्रार्थना है जिसमें कहा गया है- 'हे अग्नि, एक पिता जिस प्रकार अपने पुत्रों के लिए उपहार लाता है वैसे ही आप हमारे कल्याण के लिए उपहार लायें।'

ऋग्वेद के प्राचीन मन्त्रों में देवताओं की प्रार्थना

की प्रवृत्ति है। सविता देवता की एक प्रार्थना गायत्री मन्त्र के रूप में सर्वाधिक चर्चित है जिसमें देवता (सूर्य, सविता) से प्रार्थी की बुद्धि को प्रेरित करने की विनती है। इस प्रकार देव-स्तुति को उपासना का प्राचीनतम स्वरूप मानना असंगत नहीं होगा।

इन्ही देव-स्तुतियों बीच हविष् से हवन करने का भी संकल्प अनेक स्थलों पर मिलते हैं। रुद्र सूक्त में कहा गया है- सुम्नायं निद्विशो अस्माकमाचरारिष्टा वीरा जुहवाम ते हविः। अर्थात् हे रुद्र हमारे अहित न हों; हम आपके लिए हवि का हवन करते हैं। यह देव-यज्ञ का स्पष्ट उल्लेख है। एक स्थान पर अग्निदेव से प्रार्थना है कि क्रव्याद नामक मांसवाहक अग्नि को दूर करता हूँ वह यम के पास जाये और यहाँ दूसरे अग्नि देवताओं के लिए हविष् का वहन करें। अग्नि को दूत कहा गया है- अग्निं इतं वृणीमहे। यज्ञ की यह अवधारणा भी आदिकाल से है।

उपासना की दो पद्धतियाँ 'नमसा विधेम' और 'हविषा विधेम' वैदिक प्रवृत्ति रही। चूँकि वेद के मन्त्र गुरु के मुख से सीखे जाते थे फलतः उच्चारण की विकृति को दूर करने के लिए मन्त्रों की पीढ़ी दर पीढ़ी तक रक्षा के लिए शिक्षा और व्याकरण के ज्ञान की अनिवार्यता थी, अतः शिष्य की चारित्रिक शुचिता एवं वेदाध्ययन की योग्यता विशेष रूप से देखी जाती थी। ब्राह्मणों ने वेद की रक्षा के लिए अपनी पूरी ऊर्जा लगा दी। यह समय की माँग थी, उनकी मजबूरी थी। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि वैदिक उपासना की दोनों पद्धतियों में धर्म के 'शून्य-स्तर' का अनुपालन हुआ। यही कारण था कि वैदिक उपासना एक सीमा में सिमटती गयी।



# शास्त्राध्ययन-परम्परा का संरक्षण

आचार्य किशोर कुणाल



प्राचीन काल से ही हमारा देश, ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का प्रारम्भ, पल्लवन एवं संरक्षण के प्रति प्रयत्नशील रहा है। हमारे ऋषियों ने अपने सम्पूर्ण जीवन-काल का उत्सर्ग कर इस ज्ञान की परम्परा के संरक्षण का प्रतिमान स्थापित किया है। जहाँ नवम शती के वृद्ध वाचस्पति ने शास्त्र-चिन्तन की व्यस्तता के कारण अपनी धर्मपत्नी को जीवन-भर कुछ नहीं दे पाये, तो वृद्धावस्था में अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'भामती' उसी पतिपरायणा के नाम कर दी। इस देश में इस प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण मिलते हैं। शास्त्र के संरक्षण एवं अध्ययन के लिए गुरु के साथ मिथ्याभाषण की भी कथायें उस व्यग्रता को अभिव्यक्त करती हैं, जो शिक्षार्थियों में अध्ययन के प्रति थी। एक कथा यह भी है कि एक वार गुरु अपने शिष्यों तथा ग्रन्थों के साथ नाव से नदी पार कर रहे थे। अधिक भार के कारण नाव के डूबने की स्थिति में कुछ शिष्यों ने नदी में छलौंग लगा दी, ताकि नाव डूबने से बच जाये और अमूल्य ज्ञान के भण्डार ग्रन्थ और उनके संरक्षक गुरु सुरक्षित रह जायें। ऐसी गौरवमयी परम्परा प्राप्त होने की स्थिति में आज निश्चित रूप से शास्त्राध्ययन का संरक्षण आवश्यक है।

शास्त्र शब्द की निष्पत्ति शास् धातु में 'घ्नन्' प्रत्यय के योग से होती है। शासन, अनुशासन आदि शब्द इसी धातु से निष्पन्न हैं। शास्त्रों की अतिशय महिमा है। गीता में भगवान् ने भी शास्त्र में उक्त विधानों के आधार पर कर्म करने का उपदेश करते हुए कहा है –

**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।**

**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।। (गीता : 16।24)**

तैत्तिरीयोपनिषद् में आचार्योन्तेवासिनमनुशास्ति इस पंक्ति में 'अनुशास्ति' शब्द इसी शास्त्र का संकेत करता है। महाभाष्य में उद्धृत वार्तिक शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन में वार्तिककार ने 'शास्त्र' शब्द का प्रयोग ज्ञान के अर्थ करते हुए कहा है कि ज्ञान प्राप्त कर यदि शुद्ध शब्द का प्रयोग करें तो उससे उन्नति होती है। इसी स्थल पर महाभाष्यकार ने ज्ञान का उत्कर्ष प्रतिपादित करते हुए उस वैदिक पंक्ति को उद्धृत किया है, जिसमें अग्निष्टोम एवं नाचिकेताग्निचयन-यज्ञ करने का फल तथा उसके ज्ञान के फल को समतुल्य बतलाया गया है –

**योऽग्निष्टोमेन यजते य उ चैनमेवं वेद ।**

**योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते ।**

स्पष्ट है कि आर्ष परम्परा शास्त्राध्ययन के प्रति अत्यधिक आस्था रखती है। इसलिए ऋषियों ने इसे धर्म के साथ जोड़ा है; इसे मोक्ष आदि अदृष्ट प्रयोजन की सिद्धि का भी साधन माना है। महाभाष्यकार का कथन है-

**ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ।**

हमारे देश में प्राचीनकाल में शास्त्राध्ययन की परम्परा पर्याप्त सुदृढ़ थी। शास्त्रों की अनेक शाखायें थीं। मुण्डकोपनिषद् ने वेद सहित सभी विद्याओं को परा और अपरा विद्या के रूप में विभक्त करते हुए इनकी सूची प्रस्तुत की है –

**तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।। 4 ।। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।। 5 ।।**



यहाँ अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् तथा ज्योतिष का समावेश है, जो शास्त्र के रूप में अभिहित हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय में भी नारद के मुख से इन विद्याओं की सूची दी गयी है, जिसमें इतिहास, पुराण, वैदिक व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या और देवजनविद्या को अध्येय विषय माना गया है—

**ऋग्वेदं भगवोऽध्वैमि यजुर्वेदः सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यः ऋशिं देवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याः सर्पदेवयजन-विद्यामेतद्भगवोऽध्वैमि । 12 ।**

उपनयन संस्कार इन्हीं विषयों के अध्ययन का प्रारम्भ था। आठ वर्ष की अवस्था में माणवक अपनी माता से प्रथम भिक्षा ग्रहण कर वन में स्थित गुरुकुल चले जाते थे, जहाँ उनकी शिक्षा सम्पन्न होने पर समावर्तन संस्कार होता था और वे घर लौटकर गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करते थे। विद्यालय में गुरु के सान्निध्य में अपने परिजनों से दूर रखकर इनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न करायी जाती थी।

प्राचीन गुरुकुल की यह परम्परा दीर्घकाल तक चली। इस परम्परा में जिस शास्त्र का अध्ययन करना होता था, उसका सांगोपांग अध्ययन कराया जाता था। व्याकरण के छात्र के लिए अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, कात्यायन का वार्तिक तथा महाभाष्य का अध्ययन कराया जाता था। शिक्षा शास्त्र अर्थात् उच्चारण-प्रक्रिया से सम्बद्ध शास्त्र का ज्ञान सबके लिए अनिवार्य था। इस में प्रवीणता पाना शिक्षित होने का द्योतक था। इस गुरुकुल परम्परा सबसे बड़ी विशेषता थी कि ग्रन्थ को आदि से अन्त तक आत्मसात् करना होता था। तब उसे अन्य ग्रन्थ पढ़ने की अनुमति मिलती थी।

महाभाष्यकार ने विद्या के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विषय का संकेत किया है कि विद्या चार चरणों में अधिगत होती है। उन्होंने चार कालों का उल्लेख किया है— आगम काल, स्वाध्यायकाल, प्रवचनकाल एवं व्यवहारकाल। आगमकाल में विद्या गुरु के मुख से सीखी जाती थी; ग्रन्थों को कंठस्थ किया जाता था। स्वाध्यायकाल में अधीत ग्रन्थों का चिन्तन एवं अभ्यास किया जाता था। प्रवचनकाल अध्यापन का काल था और व्यवहारकाल यज्ञादि में अपने अधीत विषयों का प्रयोग कर अभ्युदय की सिद्धि की जाती थी। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन शास्त्र को सुरक्षित रखने के लिए लगा दिया जाता था।

प्राचीन काल की शिक्षा-प्रणाली की कई विशेषताओं के संकेत विभिन्न रूप में मिलते हैं। मूल ग्रन्थ को छात्र कण्ठस्थ कर लेते थे। श्रुति की परम्परा भी इसी शैली की ओर संकेत करती है। जो ग्रन्थ कण्ठस्थ नहीं है, उसकी स्थिति ऐसी सम्पत्ति के समान मानी जाती जो दूसरे के हाथ में हो—

**पुस्तकस्था च या विद्या परहस्तगतं धनम् ।**

**कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् । ।**

यही कारण है कि प्राचीन काल के ग्रन्थ या तो सूत्र-शैली में लिखे गये हैं, या कारिकाओं में निबद्ध किये गये हैं, जिससे उन्हें कण्ठस्थ रखने में सुविधा हो। इन कण्ठस्थ ग्रन्थों की व्याख्या गुरु के मुख से सुनकर शिष्य उसे हृदयंगत कर लेते थे।

प्राचीन परीक्षा पद्धति के सम्बन्ध में भी वैद्यराज जीवक की कथा एक आदर्श उदाहरण है, जिसमें गुरु ने

जीवक के हाथ में एक खनती देते हुए कहा कि तक्षशिला के चारों ओर एक-एक योजन घूमकर जो भी अभैषज्य (दवा के लायक नहीं) मिले, उसे ले आओ। जीवक खनती लेकर खोजता रहा, किन्तु सभी पदार्थ उसे भैषज्य से सम्बद्ध ही दीखे। खोज-थककर वह गुरु-चरणों के पास आकर बोला कि कुछ भी अभैषज्य नहीं मिला। तब गुरु ने कहा कि अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गयी। इस प्रकार अध्ययन की समाप्ति के बाद समावर्तन संस्कार के पूर्व एक बार औपचारिक रूप से परीक्षा सम्पन्न होती थी। बीच में परीक्षा की औपचारिकता अनिवार्य नहीं थी। छात्र से यह नहीं प्रश्न किया जाता था कि तुम किस कक्षा में पढ़ते हो; पुस्तक के स्थल के सम्बन्ध में पूछा जाता था कि कहाँ तक प्रगति हुई है। इस पद्धति की तीसरी विशेषता थी कि छात्र गुरु के साथ अन्तेवासी के रूप में रहते थे, जिससे एक ओर छात्रों की दिनचर्या संयमित होती थी; छात्र शास्त्र के अर्थ के साथ-साथ आचार का भी ग्रहण करते थे। इसीलिए तो निरुक्तकार यास्क ने आचार्य शब्द का निर्वचन करते हुए कहा – **आचार्यः आचारं ग्राहयति आचिनोति वा अर्थान्**। ये आचार्य अपना पूरा समय अध्यापन में देते थे। शास्त्र के संरक्षण एवं अध्यापन के प्रति उनकी पूरी निष्ठा रहती थी। यहाँ मिथिला के वृद्ध वाचस्पति की शास्त्र-निष्ठा की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी, जो भामती ग्रन्थ की रचना करते हुए अपना गार्हस्थ्य भी भूल गये। इस प्रकार छात्र और आचार्य एक साथ पूरी निष्ठा के साथ शास्त्रों का संरक्षण करते थे।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति में चतुष्पाठी की परम्परा के भी संकेत मिलते हैं। मिथिला में तो बहुत हाल तक यह परम्परा रही है। इस शिक्षा पद्धति में अध्ययन एवं अध्यापन साथ-साथ होता था। गुरुकुल में सद्यःप्रविष्ट माणवकों को उपाध्याय पढ़ाते थे। ये उपाध्याय सदुपाध्याय से शिक्षा ग्रहण करते थे। सदुपाध्याय महोपाध्याय के छात्र थे तथा सभी महोपाध्याय अपनी शंका की निवृत्ति के लिए महामहोपाध्याय के पास जाते थे। मैथिली भाषा का 'चौपाड़ि' शब्द इस क्षेत्र के प्रारम्भिक टोल विद्यालयों के लिए प्रयुक्त है।

मिथिला में 'शरयन्त्री' की परम्परा भी बहुत दिनों तक चली। 'रेहल' के लिए संस्कृत में शरयन्त्र या शरशलाका यन्त्र का प्रयोग हुआ है (हर्षचरित : द्वितीय निःश्वास)। जो विद्वान् सभी शास्त्रों में निष्णात हो जाते थे, वे सार्वजनिक रूप से एक घोषणा पत्र पढ़ते थे कि आज से मुझे शरयन्त्र अर्थात् पुस्तक पढ़ने के लिए रेहल की आवश्यकता नहीं रही। गोकुलनाथ उपाध्याय भी ऐसे ही एक शरयन्त्री थे।

इस प्रकार प्राचीन शिक्षा पद्धति में शास्त्रों का सर्वांगीण अध्ययन कर छात्र निष्णात हो जाते थे और गुरु शिष्य को घर जाने की अनुमति देते थे। फलतः छात्र शास्त्र के सर्वांगीण ज्ञान के लिए अध्ययन करते थे न कि परीक्षा में उत्तीर्ण कर अगली कक्षा में प्रवेश लेने के लिए। आधुनिक परीक्षा पद्धति भी शास्त्राध्ययन की गम्भीरता के बजाय पल्लवग्राहिता को बढ़ावा दे रही है। आज वस्तुनिष्ठ प्रश्न पर आधारित पद्धति तो इसे और हवा दे रही है।

निश्चित रूप से आज शास्त्राध्ययन की प्रवृत्ति और परम्परा का हास हुआ है। इसके लिए व्याकरण शास्त्र में प्रक्रिया-ग्रन्थों की रचना एवं उसका अध्यापन भी कम उत्तरदायी नहीं है। अष्टाध्यायी के क्रम से व्याकरण का अध्ययन नहीं होने के कारण छात्र समस्त व्याकरण पढ़ने की बाध्यता से मुक्त होते गये फलतः 'पञ्च-लकारी' विद्वानों की बाढ़ आ गयी और वे शास्त्र से दूर भागते गये।

आज इसे पुनरुज्जीवित करने की आवश्यकता है। इस हास के कारणों का विवेचन इस प्रयास की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीनकाल में या मध्यकाल में किन परिस्थितियों में शास्त्राध्ययन की परम्परा प्रस्फुटित हुई और विकास के पथ पर आरूढ़ हुई, उन परिस्थितियों को हमें देखना होगा।

भारतीय वाङ्मय में विभिन्न शास्त्रों की विषयवस्तु एवं उनके बीच परस्पर सम्बन्धों का विवेचन करते हुए हम पाते हैं कि ये सभी शास्त्र यज्ञ-केन्द्रित थे। छह वेदाङ्गों से इनकी शाखायें विकसित हुईं और पल्लवित होती हुई शाखायें स्वतन्त्र अस्तित्व कायम कर सकीं। व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा, न्याय-वैशेषिक, योग-सांख्य आदि या तो यज्ञ के पक्ष में यज्ञ कराने के लिए विकसित हुए या उसका विरोध कर ज्ञान पक्ष को प्रबल बनाने के लिए अस्तित्व में आये। एक ओर यज्ञ के पोषक शास्त्र याज्ञिकों की जीविका के आधार बने तो दूसरी ओर उसके भञ्जक-शास्त्र व्यापक स्तर पर सामाजिक चेतना को जगाकर एक चिन्तन-धारा को विकसित करते रहे। प्रारम्भ में उत्तरमीमांसा अर्थात् वेदान्त दर्शन को छोड़कर सभी शास्त्र यज्ञ कराने के लिए याज्ञिकों के उपयोगी थे। यहाँ तक कि विशुद्ध रसायन शास्त्र एवं गणित शास्त्र से सम्बद्ध शुल्बसूत्र एवं ज्यौतिष-शास्त्र का निर्माण भी यज्ञ के उपयोग के लिए हुआ। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण के प्रयोजन की विवेचना करते हुए इसे यज्ञ से ही जोड़ने का प्रयास किया है। **रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्** में लघुता को छोड़ शेष सभी प्रयोजनों का उदाहरण उन्होंने मीमांसा से दिया है। इस प्रकार प्राचीन काल में शास्त्राध्ययनों का मुख्य प्रयोजन यज्ञ कराकर जीविका प्राप्त करना था। राजागण विभिन्न प्रकार के यज्ञ करते थे; फलतः शास्त्राध्ययन अर्थकर था। यह परम्परा बहुत दिनों तक चली। भाष्यकार पतञ्जलि ने भी पाटलिपुत्र में तत्कालीन राजा पुष्यमित्र शुंग को यज्ञ कराया था। प्राचीन काल में यज्ञ के साथ-साथ शास्त्रार्थ में विजयी होकर राजा द्वारा आदृत होकर आजीविका प्राप्त करना भी अर्थागम का एक स्रोत रहा। राजा की सभा में प्रकाण्ड विद्वान् रहा करते थे। फलतः शास्त्राध्ययन की प्रवृत्ति समाज में बनी रही। मध्यकाल में विस्तृत यज्ञों की आवृत्ति कम तो हो गयी, जैसा कि हम राजशेखर, क्षेमेन्द्र आदि के काव्यों के अन्तःसाक्ष्यों से जानते हैं; किन्तु शास्त्रार्थ कर पारितोषिक एवं आजीविका प्राप्त करने की परिस्थिति राजाओं एवं सामन्तों की संख्या में वृद्धि के कारण अधिक मुखरित हुई, जो शास्त्राध्ययन की प्रवृत्ति को कायम रखने में सहायक सिद्ध हुई। मध्यकाल में 'प्रतिवादि-भयंकर' 'पक्षधर' आदि उपाधियाँ शास्त्रार्थ कर विजयी होने की परम्परा को संकेतित करते हैं। मध्यकाल में राजाओं और सामन्तों की ओर से विद्वानों का संरक्षण एवं उन्हें 'ब्रह्मोत्तर' के रूप में भूमिदान, ग्रामदान, स्वर्णदान आदि करने की परम्परा स्फुट हुई। इस काल के धर्मशास्त्रीय-ग्रन्थों में इसकी चर्चा प्रचुर रूप में उपलब्ध होती है। स्वतन्त्रता के काल तक आंशिक रूप से यह परिस्थिति बनी रही। वीसवीं शदी के आरम्भिक दशकों में जमींदारों ने अन्य क्षेत्रों में भले जो कुकर्म किये हों, संस्कृत-शास्त्रों के संरक्षण में उनकी भूमिका सराहनीय रही। फलतः प्राचीन काल से लेकर स्वतन्त्रता के पूर्व तक हस्त-क्रम में ही सही समाज में वेदांगों एवं षड्दर्शनों के अध्ययन की प्रवृत्ति बनी रही।

यज्ञ-केन्द्रित शास्त्रों के समानान्तर काव्य एवं काव्यशास्त्र की परम्परा की गाथा अलग ही रही। इस परम्परा का विकास दो रूपों में हुआ। काव्य-लेखन दो प्रकार से किये गये- प्रथम ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए भक्ति-मार्ग का विकास हुआ और रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण आदि की पुष्ट परम्परा अस्तित्व में आयी। दूसरी ओर कवियों ने प्राकृत जनों को प्रसन्न कर धन, यश आदि प्राप्त करने के लिए काव्यों की रचना की। काव्यशास्त्रियों ने इसे व्यापक रूप देकर समाज से जोड़ने का कार्य किया। आद्याचार्य भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में स्पष्ट रूप से नाट्य को सर्वसाधारण से जोड़ा है। ये कविगण अपनी काव्यकला से राजा को प्रसन्न कर पारितोषिक और जीविका पाते रहे। फलतः स्वतन्त्रता से पूर्व तक इस का अध्ययन अर्थकर रहा।

स्वतन्त्रता के बाद इन शास्त्रों का सम्बन्ध अर्थ के साथ विच्छिन्न हो गया है। आज केवल ज्यौतिष कुछ रूप में अर्थकर है। इस में भी ज्यौतिष के संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद एवं अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अन्यदेशीय ज्यौतिष

परम्परा के आगमन के कारण मूल भारतीय परम्परा विच्छिन्न हो रही है। आयुर्वेद की भी कमोवेश यहीं स्थिति है।

आज शास्त्राध्ययन का उद्देश्य केवल शोधकार्य एवं अध्यापन ही शेष रह गया है। अध्ययन के लिए अध्यापन और अध्यापन के लिए अध्ययन, यह चक्रकापत्ति शास्त्राध्ययन की अवनति का प्रमुख कारण है। इससे उबरने के लिए हमें आज प्राचीन शास्त्रों की अन्य उपयोगिता का अन्वेषण करना होगा।

षड्वेदांग एवं षड्दर्शन भले अपनी प्रारम्भिक अवस्था में यज्ञ-केन्द्रित शास्त्र थे किन्तु बाद में वे बहूपयोगी हो गये। मीमांसा, जो विशुद्ध कर्मकाण्ड एवं यज्ञोपयोगी शास्त्र था, वह वाक्य-विवेचन के लिए प्रयुक्त हुआ। परम्परा विरोधी वाक्यों की विवेचना कर विधि-निषेध एवं विकल्प के निर्धारण में इस शास्त्र का उपयोग किसी भी भाषा के लिए वर्तमान में भी किया जा सकता है। न्याय-शास्त्र का प्रमाण विवेचन भी आधुनिक युग में वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। शास्त्रों का बहुद्देश्य-स्थापन की परम्परा हम प्राचीनकाल से ही पाते हैं। भर्तृहरि ने व्याकरण की विवेचना के लिए वेदान्त का उपयोग किया। मध्यकाल में गंगेशोपाध्याय द्वारा प्रवर्तित नव्य-न्याय का उपयोग वैयाकरणों और काव्यशास्त्रियों ने प्रचुर रूप से किया और किसी भी शास्त्र का अधिकारी विद्वान् होने के लिए पदशास्त्र अर्थात् व्याकरण, वाक्यशास्त्र अर्थात् मीमांसा और प्रमाणशास्त्र अर्थात् न्यायशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक माना जाने लगा और 'पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ' की उपाधि पाण्डित्य की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करने लगी।

इस प्रकार आधुनिक काल में भी इसे बहूपयोगी बनाने की दिशा में इन शास्त्रों का पुनरवलोकन आवश्यक है। वैशेषिक-दर्शन विशुद्ध विज्ञान का दर्शन है; इसमें तत्त्वों एवं पदार्थों का विवेचन किया गया है, किन्तु नवीन वैज्ञानिक अन्वेषण के परिप्रेक्ष्य में आज इस दर्शन में नवीन सिद्धान्तों को जोड़ने और प्राचीन मान्यताओं के खण्डन की आवश्यकता है। प्राचीन शास्त्रकारों ने समय-समय पर यह काम किया है; मध्यकाल में भी टीकाओं के माध्यम से यह कार्य किया गया है, किन्तु पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वार्तिक लिखकर जिस प्रकार की परम्परा का प्रारम्भ किया था उसे आज पुनः विकसित करना होगा, तभी शास्त्राध्ययन समाज की गति के साथ जुड़ सकेगा। इस दिशा में महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा की चर्चा प्रासंगिक होगी, जिन्होंने 'परमार्थदर्शनम्' नामक ग्रन्थ में न्यूटन, प्लेटो, अरस्तू आदि वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के मतों की भी विवेचना कर वैशेषिक दर्शन को नवीन आयाम देने का प्रयास किया था।

शास्त्राध्ययन-परम्परा के संरक्षण के लिए आज की परिस्थिति में कुछ अन्य उपाय भी किये जा सकते हैं। आज पुनः गुरुकुल की परम्परा को पुनरुज्जीवित करने के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना आवश्यक है, जहाँ प्रथमा से आचार्य तक की पढ़ाई एक परिसर में हो; छात्रों की वृत्ति, भोजन, आवास आदि की व्यवस्था सरकार / मन्दिर / मठ आदि की ओर से हो। अध्ययन काल की समाप्ति पर परीक्षा तो ली जाये; किन्तु डिग्री से अधिक वास्तविक योग्यता का आकलन किया जाये तथा इसे अर्थकर बनाया जाये, जिसके लिए प्रत्येक विद्यालय में संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य हो, ताकि संस्कृत के शिक्षकों की नियुक्ति सम्भव हो सके।

इस दिशा में एक कार्य और किया जा सकता है कि अध्ययन काल में ही मेधावी छात्रों का चयन कर एक एक शास्त्र के संरक्षक के रूप में घोषित कर उन्हें आजीवन वृत्ति दी जाये, ताकि वे निश्चिन्त होकर उस शास्त्र का सर्वांगीण अध्ययन कर सकें। इस प्रकार यदि एक हजार छात्रों का चयन राष्ट्रीय स्तर पर कर लिया जाता है, तो शास्त्राध्ययन-परम्परा को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में यह ठोस कदम होगा।

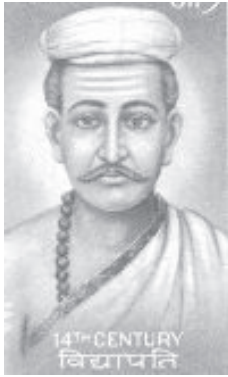


# हिन्दी के प्रचार-प्रसार में धर्मसंवाहक सन्तों की भूमिका

विद्यावाचस्पति डा. श्रीरंजन सूरिदेव

धर्म-संवाहकों- सन्तों की वाणी से न केवल समाज का उपकार हुआ, बल्कि उन भाषाओं एवं उनके साहित्य को भी महान् लाभ हुआ है, जिन भाषाओं में सन्तों ने उपदेश किया। आदिकवि वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा और साहित्य को लौकिक धारातल पर उतारने का भी कार्य किया। बौद्धों एवं जैनियों ने क्रमशः पालि एवं प्राकृत को स्थिरता प्रदान की। हिन्दी भाषा एवं साहित्य के साथ भी ऐसा ही हुआ है। इसकी प्राचीनता के लिए हम सरहपाद की खोज करते हैं तो दृढ़ता के लिए गोस्वामी तुलसीदास एवं सूरदास का सहारा लेते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा धार्मिक साहित्य से आरम्भ हो सतत पल्लवित-पुष्पित होती रही। इसी विषय पर गम्भीर आलेख यहाँ प्रस्तुत है, अनेक भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा. श्रीरंजन सूरिदेव की लेखनी से। सं।

हिन्दी-भाषा और उसका साहित्य किसी एक विभाषा और उसके साहित्य का नहीं, अपितु अनेक विभाषाओं और उनके साहित्यों की समष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे विभिन्न नदियाँ समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं, वैसे ही विभिन्न भाषाओं और विभाषाओं की अनेकता ने हिन्दी में आकर एकता उपलब्ध कर ली है। अनेक भाषाओं और विभाषाओं के ताने-बाने से बुनी हुई हिन्दी एक ऐसी आधुनिक भारतीय भाषा है, जिसे संस्कृत के समान ही देश की व्यापक भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अवश्य ही, संस्कृत ने हिन्दी के लिए



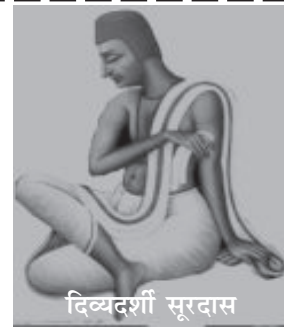
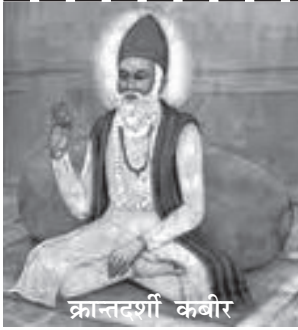
ही अपना स्थान रिक्त कर दिया है। कहना न होगा कि आज हिन्दी ही संस्कृत की स्थानापन्न होकर आसेतु-हिमाचल अपना वर्चस्व बनाये हुई है।

**‘पृथ्वीराजरासो’**  
के प्रणेता महाकवि चन्द बरदाई ‘षड्भाषा पुराण

च कुराणं कथितं मया’ का दावा करते हैं। इन्होंने पुराण तथा कुराण, अर्थात् संस्कृत और इस्लाम से सम्बद्ध भाषाओं के अतिरिक्त अन्य किन छह भाषाओं का संकेत किया है, यह निश्चित नहीं है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने अपने



‘हिन्दी भाषा और उसका साहित्य’ निबन्ध में यह अनुमान किया है कि चन्द बरदाई डिंगल या पिंगल में लिखने की अपेक्षा एक ऐसी भाषा में लिखने का प्रयत्न कर रहे थे जो अधिक से अधिक भारतीय भाषा-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व कर सके। जिन विभाषा-कवियों ने अपने समक्ष चन्द बरदाई के भाषिक आदर्श को रखा, वे ही हिन्दी के कवि माने गये। उदाहरणार्थ, अवधी में लिखनेवाले जायसी और तुलसी, भोजपुरी क्षेत्र के कबीर, ब्रजभाषा के कवि सूर या मैथिली के कवि विद्यापति हिन्दी के ही कवि के रूप में मान्य हुए।



अनेकता में एकता की विशिष्टता के लिए उल्लेखनीय भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही उसकी अभिव्यक्ति का व्यापक और अभिमत माध्यम एक मात्र हिन्दी भाषा ही है। इसीलिए, धर्मसंवाहक सन्तों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी को ही अपनाया जिससे उनकी वैचारिकी जनग्राह्य बनी और हिन्दी का भी व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसका 'एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा' कहावत भी चरितार्थ हुई।

हिन्दी-भाषा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। शौरसेनी प्राकृत तथा तत्सम्बद्ध अपभ्रंशों से विकसित हिन्दी ने तत्सम और भाषावैज्ञानिक सीमा का अतिक्रमण करके, अपने साहित्यिक तथा परिनिष्ठित रूप की विशाल परिधि का निर्माण किया, जिसमें समस्त उपभाषाओं एवं विभाषाओं के समाहित हो जाने से हिन्दी का महासागर ही निर्मित हो गया।

धर्मसंवाहक सन्तों तथा उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं, पीठों अथवा नदियों द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की स्थिति का आकलन करें तो स्पष्ट होगा कि इस सन्दर्भ में हिन्दी-साहित्य के भक्ति काल की ऐतिहासिक भूमिका रही है। इस काल के सूर, कबीर, तुलसी, जायसी आदि धर्मसंवाहक सन्त कवियों ने वेदान्त और भक्तिशास्त्र, रामायण और भागवत को हिन्दी पाठकों के लिए सर्वसुलभ कर दिया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्यिक इतिहास के सन्दर्भ में देखें तो स्पष्ट होगा कि आदिकाल से

ही धर्म के संवाहक सिद्ध और सन्त कवियों का हिन्दी के प्रचार-प्रसार में बहुमूल्य योगदान रहा है। इस सन्दर्भ में प्राग्भारतेन्दु-युग, अर्थात् ईसा की उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसी क्रम में ब्राह्म समाज और आर्य समाज जैसी सामाजिक सुधार-कार्य से जुड़ी धार्मिक संस्थाओं का हिन्दी के प्रचार में ऐतिहासिक योगदान भुलाया नहीं जा सकता। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जैसे धर्मवाहक सन्त का समाज-सुधार एवं अन्य धार्मिक विश्वास का उन्मूलन के साथ ही हिन्दी-प्रचार की दिशा में किया गया प्रयास अभूतपूर्व है। इन्होंने चारों वेदों का हिन्दी-भाष्य उपन्यस्त करके हिन्दी के अनुवाद-साहित्य को परवान चढ़ाया साथ ही जन के लिए वेद का ज्ञान हिन्दी में सुलभ किया।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में, धर्मसंवाहक सन्तों में वज्रयानी सिद्ध, कापालिक आदि देश के पूर्वी भाग में और सन्त पश्चिमी भाग में हिन्दी का अलख जगा रहे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मन्तव्य है कि धर्माश्रित भक्ति का जो स्रोत दक्षिण से उत्तर की ओर आ रहा था, उसे, राजनीतिक परिवर्तन के कारण, जनहृदय में प्रतिष्ठित होने का अनुकूल अवसर मिला। रामानुजाचार्य जैसे विशिष्टाद्वैतवादी धर्मसंवाहक सन्त (संवत् 1073 वि.) ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था, उनकी ओर जनता सहज ही आकृष्ट हुई। इसी प्रकार द्वैतवादी मध्वाचार्य (विक्रम

की तेरहवीं-चौदहवीं शती) के सम्प्रदाय की ओर भी गुजरात की जनता का सहज रुझान हुआ। पुनः देश के पूर्वी भाग में जयदेवजी की कृष्णभक्ति के संगीत की गूँज थी, जिसके सुर में मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपना सुर मिलाया।

ईसा की पन्द्रहवीं शती के स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा के प्रसिद्ध धर्मसंवाहक सन्त स्वामी रामानन्द ने राम की सगुणोपासना पर बल दिया, तो दूसरी ओर पुष्टिमार्गी शुद्धाद्वैतवादी धर्मसंवाहक सन्त ने कृष्ण की प्रेमाभक्ति में जनजीवन को रसलीन किया। इस प्रकार, उस समय रामोपासक और कृष्णोपासक इन दो प्रमुख धर्मसंवाहक सन्त कवियों की एक ऐसी विशिष्ट परम्परा प्रवर्तित हुई, जिसने हिन्दी को, हिन्दी काव्य को, प्रौढता पर पहुँचाने का महनीय कार्य किया। इन धर्मसंवाहक सन्तों के दो प्रमुख वर्ग प्रतिष्ठित हुए- प्रथम निर्गुणवादी ज्ञानाश्रयी शाखा और द्वितीय सगुणवादी भक्तिमार्गाश्रयी शाखा। निर्गुणवादी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रसिद्ध धर्मसंवाहक सन्तों में कबीर, रैदास, दादूदयाल, मलूकदास, गुरुनानक, सुन्दरदास आदि के काम रेखांकनीय हैं। निर्गुणवादी धर्मसंवाहक सन्तों से सूफी सन्तों की परम्परा का भी ऐतिहासिक महत्व है, जिसमें कुतबन, मंझन, जायसी, उसमान, नूर मुहम्मद आदि शीर्षण्य हैं।



सन्त तुकाराम का प्राचीनतम उपलब्ध चित्र  
(‘अभंग’ की पाण्डुलिपि(1832) से)

द्वितीय सगुणवादी भक्तिमार्गाश्रयी शाखा में तुलसी, सूर, मीरा, रसखान आदि के अतिरिक्त अष्टछाप के सन्तकवियों ने नाम मूर्धन्य हैं। इस प्रकार, हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से धर्मसंवाहक वैष्णव सन्तों का अवदान महन्महनीय है। इसी सन्दर्भ में महाराष्ट्र और गुजरात के धर्मसंवाहक सन्तों की हिन्दी के विकास-विस्तार में सहभागिता ततोऽधिक मूल्यवान् है और फिर उसी क्रम में दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा के सन्त कवियों का भी अवदान महार्घ है।

ज्ञातव्य है, हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति मराठी और गुजराती धर्मसंवाहक सन्तों की स्वाभाविक आत्मीयता रही है। मध्ययुग से आजतक मराठी, सन्त धर्म-प्रभावनामूलक कीर्तन-भजन के अवसर पर अभंगों और पदों के साथ हिन्दी-पद भी गाते आ रहे हैं। आचार्य विनयमोहन शर्मा-प्रणीत “हिन्दी को मराठी सन्तों की देन” नामक ग्रन्थ से यह सूचित होता है कि जो मराठी सन्तकवि काव्य-प्रतिभा से सम्पन्न रहे हैं, उन्होंने मराठी पदों के साथ ही हिन्दी पदों की भी समानान्तर रचना की है और जो केवल कीर्तनकार रहे हैं, वे मराठी अभंगों के साथ प्रसिद्ध हिन्दी सन्तों के पद भी गाते रहे हैं। इन मराठी सन्तों ने राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए



दादू दयाल

भाषा-भेद अथवा प्रान्त-भेद कभी स्वीकार नहीं किया।

ईसा की अट्ठारहवीं शती में, महाराष्ट्र के सन्त महीपति बोआ ने 'भक्तविजय' नाम का सन्तचरित्र-ग्रन्थ लिखा है, जिसमें मराठी के अतिरिक्त धर्मसंवाहक हिन्दी सन्तों का भी उल्लासपूर्ण गुणकीर्तन हुआ है। तत्कालीन धर्मसंवाहक सन्तों के हिन्दी पदों में प्रायः स्थानीय भाषा और ब्रजभाषा के मिश्रित रूप मिलते हैं। परन्तु तेलंगाना की सत्रहवीं शती के नीतिपरक दोहे प्रायः विशुद्ध हिन्दी की खड़ी बोली में गुम्फित हुए हैं। जैसे-

साधू हमारे आत्म, हम साधू के जीव।  
साधू दुनिया यों बसे, ज्यों गोरस में धीव।।  
रामभक्ति बड़ी कठिन द्वय खांडै जैसी धारा।  
डगमगाय तो गिर पड़े, न तो ऊतरै पार।।  
सादू का घर उच्च हय, जैसी बड़ी खजूर।  
चढ़े तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चककाचूर।।

कहना न होगा कि मराठी सन्तों के नीतिपरक दोहों पर प्रायः हिन्दी सन्तों के नीतिपरक दोहों की प्रभावान्विति सहज ही परिलक्षित होती है।

आचार्य विनयमोहन शर्माजी ने हिन्दी को मराठी सन्तों के अवदान के सन्दर्भ में विशद विवेचना उपन्यस्त की है। उन्होंने लिखा है कि महाराष्ट्र में हिन्दी के दो रूप विकसित हुए- प्रथम अरबी-फारसी मिश्रित और द्वितीय ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली-मिश्रित, जिसे मराठी हिन्दी नाम से अभिहित किया गया है। मराठी हिन्दी में गद्य और पद्य के रचयिता सन्त कवियों में नामदेव, एकनाथ और तुकाराम की त्रयी, इतिहास-प्रतिष्ठ है।

प्रस्तुत सन्त-त्रयी में नामदेव ने अपनी युगानुरूप धर्म-संवाहक विचार से एक ओर उत्तर भारत में क्रान्ति की अग्निशिखा प्रज्वलित की तो दूसरी ओर खड़ी बोली हिन्दी के पद्य को संगीतबद्ध पद-शैली प्रदान की। नामदेव (विक्रम की चौदहवीं-पंद्रहवीं शती) अपने समय के निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक तथा हिन्दी में संगीत शैली के प्रथम गायक थे। नामदेव के अनेक हिन्दी पदों में एक पद द्रष्टव्य है:

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखहु तत सोई।  
माइया चित्र विचित्र विमोहिया बिरला बूझे कोई।।

नामदेव के समान ही एकनाथ (ईसा की सोलहवीं शती) ने भी हिन्दी में स्फुट रचनाएँ की हैं। हिन्दी में पदों की संख्या पर्याप्त है। 'गौलण' का एक उदाहरण है-

मैं दूधी बेचन चली मथुरा,  
तुम कैव थारे नन्दजी को छोरा।

एकनाथ-लिखित रामायण, जो 'भावार्थ रामायण' के नाम से सर्वविदित है, और तुलसी-कृत रामचरितमानस में अनेक समानान्तर प्रसंग हैं। दोनों के स्रोत प्रायः एक हैं। दोनों ही सन्त कवियों ने 'वाल्मीकि-रामायण' के अतिरिक्त 'अध्यात्म-रामायण', 'योग-वासिष्ठ' आदि संस्कृत काव्य कृतियों से लाभ उठाया है।

महाराष्ट्र के वारकारी सन्तों की उक्त त्रयी में नामदेव और एकनाथ के पश्चात् तुकाराम (ईसवी सन् की सोलहवीं शती) ततोऽधिक प्रतिष्ठित और बहुख्यात हैं। इनका उपनाम तुकोबा था। कहते हैं, इन्होंने करोड़ों अभंगों की रचना की है। परन्तु, अधुना उनके कुल पाँच हजार अभंग ही प्राप्य हैं। उदाहरणार्थ एक हिन्दी अभंग द्रष्टव्य है-

धीत मिले तो सब मीले नहीं तो फोकट संग।  
पाणी पत्थर येक ही ठोर को रण भीजे अंग।।

तुकोबा के हिन्दी पदों में एक वैशिष्ट्य यह है कि इन्होंने अपने साम्प्रदायिक आराध्य देव 'विठोबा' का उल्लेख कहीं भी नहीं किया है, वरन् सर्वत्र गोपाल रघुराज गोविन्द और हरि का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि इन्होंने हिन्दी पद उस हिन्दीभाषी जनता को लक्ष्य कर प्रस्तुत किये हैं, जो विट्ठल के नाम से बहुत कम परिचित रही है।

महाराष्ट्र में जिस प्रकार धर्मसंवाहक हिन्दी-सेवी सन्तों के अनेक पन्थ या सम्प्रदाय (जैसे नाथ-सम्प्रदाय, महानुभाव-सम्प्रदाय, बारकरी सम्प्रदाय, दत्त-सम्प्रदाय, समर्थ-सम्प्रदाय आदि) हैं, उसी प्रकार गुजरात में भी धर्मसंवाहक हिन्दीसेवी सन्तों के पन्थ



हैं। जैसे- स्वामी नारायण-सम्प्रदाय, प्रणामी पन्थ, रवि-पन्थ, रामानन्द-पन्थ आदि। पन्द्रहवीं से बीसवीं शती तक हिन्दी को अपने सारस्वत अवदान से समृद्ध करनेवाले धर्मवाहक गुजराती सन्तों में नरसिंह मेहता (नरसी मेहता), दादूदयाल, दयाराम, मीराबाई, दयानतराय, खुमानबाई, मुक्ताबन्द, ज्ञानानन्द आदि के नाम ऐतिहासिक मूल्य के हैं। डा. नटवरलाल अम्बालाल व्यास ने अपनी महत्वपूर्ण कृति 'गुजरात के कवियों की हिन्दी-काव्य साहित्य को देन' में गुजरात-निवासी धर्मसंवाहक हिन्दी-सेवी सन्तों की विशाल और व्यापक चर्चा की है।

यहाँ विशेष उल्लेख्य यह है कि आधुनिक युग में गुजरात ने देश को कई धर्मसंवाहक एवं संस्कृति सन्देशक हिन्दी भक्त सन्त प्रदान किये हैं, जिनमें स्वामी दयानन्द और महात्मा गान्धी धुरिकीर्तनीय हैं। इन दोनों धर्मसंवाहक सन्तों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा होने का गौरव दिया और हिन्दी को समृद्ध करने के ऐतिहासिक प्रयत्न किये। राष्ट्र का मस्तक जब इन महानुभावों के प्रति अवनत होता है, तब वह हिन्दी के अभिनन्दन के लिए ही बनता है। स्वामी दयानन्द का सत्यार्थ-प्रकाश एवं महात्मा गान्धी की आत्मकथा इन दोनों हिन्दी ग्रन्थों की हिन्दी के प्रचार-प्रसार में गौरवमयी और क्रोशशिलात्मक भूमिका रही है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से धर्मसंवाहक सन्तों में शंकराचार्य की परम्परा को भी नज़रन्दाज नहीं किया जा सकता है। शंकराचार्यों की गदियाँ या पीठ हिन्दी के प्रचार-प्रसार से जुड़ी धार्मिक संस्थाएँ हैं। जहाँ से आदि शंकराचार्य के प्रतिनिधि मठाध्यक्ष शंकराचार्यों के प्रवचनों, प्रभाषणों और प्रकाशनों से पूरे राष्ट्र में, यहाँ तक कि अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी, हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार-कार्य सम्पन्न होता है।

आज भी भारतवर्ष के प्रायः सभी धर्म संवाहक सन्त और उनके द्वारा प्रतिष्ठापित धार्मिक

संस्थाएँ, जिनकी संख्या अनेक हैं, अधिकांशतः हिन्दी में ही लेखन, प्रवचन और प्रकाशन को महत्त्व देती हैं। इन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हिन्दी को अन्तराष्ट्रीय या वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने में इनकी भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है। ऐसी संस्थाओं में गीता प्रेस, गोरखपुर का नाम हठात् अंगुलि पर आता है। अवश्य ही, गीता प्रेस वैश्विक स्तर की हिन्दी प्रचारक धार्मिक संस्था है।

आधुनिक धर्म संवाहक सन्तों में श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार का नाम भी अग्रगण्य है। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित मासिक कल्याण के सम्पादक के रूप में श्रीपोद्दारजी ने न केवल भारत, अपितु समस्त विश्व में अध्यात्म प्रेमी जनों को अपनी भक्ति चेतना से चमत्कृत किया। निश्चय ही, परम अध्यात्मवादी सन्त पुरुष श्रीपोद्दारजी ने परम धार्मिक संस्था से प्रकाशित धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' के माध्यम से भूमण्डलीय स्तर पर हिन्दी का जो प्रचार-प्रसार कार्य सम्पन्न किया, वह अपने आप में 'न भूतो न भविष्यति' कहावत को चरितार्थ करनेवाला है। श्रीपोद्दारजी जैसे धर्मसंवाहक पुरुष का सबसे बड़ा अवदान 'कल्याण' के सभी अंक एवं उसके विशालकाय विशेषांक तथा गीता प्रेस से प्रकाशित होनेवाले सत्साहित्य हैं, जो हिन्दी की महिमा के आक्षरिक विजयोद्घोष से अनवरत मुखरित है।

धार्मिक पत्रिकाओं के माध्यम से धार्मिक संस्थाओं का, हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार में विशिष्ट अवसर है। इस सन्दर्भ में 'कल्याण' के ही समानान्तर 'अखण्ड-ज्योति (हरिद्वार), साधन (मथुरा), चण्डी (प्रयाग) अनन्त अविराम (विदिशा), स्वानुभूति प्रकाश (भावना), सनातन भारत एवं धर्मायण (पटना) आदि पत्रिकाएँ उल्लेख्य हैं। परन्तु, यह एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है।



## ऋक्-संहिता में सूर्य

डॉ. किरण कुमारी शर्मा,

वैदिक ऋषि सामान्य रूप से प्रकृति की उपासना करते थे। उन्होंने प्रकृति की विविध शक्तियों, घटनाओं और तत्त्वों में देव-भावना का आरोपण करके उनकी स्तुतियाँ कीं। ऋक्-संहिता प्रधान रूप से उन्हीं देवताओं की स्तुतिपरक ऋचाओं का संग्रह है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के विविध रूपों में विद्यमान एक 'दिव्य चेतन शक्ति' का देवाधिदेव के रूप में दर्शन किया। ये देवशक्तियाँ जगत् की प्रत्येक गतिशीलता में व्याप्त हैं और ये अनेकानेक प्राकृतिक शक्तियों को परस्पर सम्बद्ध करती हैं। इस प्रकार प्रकृति-पूजक प्रतीत होने वाले वैदिक आर्य वास्तव में समग्र प्रकृति में अभिव्यक्त अद्वितीय दिव्य शक्ति के उपासक थे।

यह समस्त ब्रह्माण्ड वैदिक दृष्टिकोण से देवताओं का कार्य क्षेत्र है, जिसे तीन भागों में बाँटा गया है- द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी। आचार्य यास्क के मतानुसार देवता तीन हैं, यथा द्युस्थानीय देव- सूर्य, अन्तरिक्ष-स्थानीय देव- इन्द्र या वायु तथा पृथ्वी-स्थानीय देव अग्नि हैं।<sup>१</sup> शौनक तथा कात्यायन ने भी इस त्रिविध विभाजन की पुष्टि की है।<sup>२</sup> बृहद्देवता में शौनक का मत है कि जो देवता सूर्य से सम्बद्ध हैं उन्हें सूर्य में निहित मानना चाहिए।<sup>३</sup> तथा निरुक्त के मत से द्यु-स्थानीय देवताओं में सूर्य की प्रधानता जरूर है किन्तु जिन देवताओं को निरुक्त द्यु-स्थानीय बताता है उनमें कई को सूर्य के अर्थ में ग्रहण करना कठिन है।

सूर्य द्यु-स्थान के प्रमुख देवता हैं जो आकाशस्थित भौतिक ज्योतिष्पिण्ड के रूप में हैं। यह प्रकृति की महत्तम शक्ति है जो समस्त प्राकृतिक गतिविधियों का केन्द्र भी है। यास्क के अनुसार 'अत्यधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होने के पर कारण-भेद या कार्य-भेद से एक देवता की भी बहुत प्रकार से स्तुति



भगवान् सूर्य की स्थानक प्रतिमा का रेखाचित्र

जे. निथसेज लिथोग नामक कलाकार द्वारा बनाया गया रेखाचित्र, 'दि माइथोलोजी ऑफ दि हिन्दूज', चार्ल्स कोलमेन, लन्दन, 1832 ई.

१. निरुक्त-7/5/2

२. बृहद्देवता-1/69; 1/5; सर्वानुक्रमणी- 2/8

३. बृहद्देवता-1/77

की जाती है।<sup>४</sup> परमैश्वर्य सम्पन्न होने से या कार्य भेद से एक देवता के भी बहुत नाम होते हैं<sup>५</sup> यथा- अग्नि-जातवेदस्, वैश्वानर आदि। सूर्य के गुणों और विविध क्रियाकलापों के कारण इन्हें भी विविध नामों से जाना जाता है। सूर्य के बहुरूपत्व संकेत स्वरूप 'सप्त दिशो नाना सूर्याः' तथा 'कति सूर्यासः' हैं।<sup>६</sup> अन्य ऋचाओं में सविता के अनेक रूपों की चर्चा है।<sup>७</sup> ऋषिगण भी सूर्य की एकरूपता से परिचित थे तभी तो 'एक ही सूर्य सबमें प्रविष्ट होकर अनेक तरह से प्रकट होते हैं' कहते हैं।<sup>८</sup> अन्य ऋचा में सूर्य देवता को विविध रूप धारण करने में समर्थ 'ब्रह्मतत्त्व' कहा गया है।<sup>९</sup> तथा देवता तत्त्व को जाननेवाले विद्वान् एक ही सूर्य को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण और गरुत्मन् आदि नामों से जानते हैं।<sup>१०</sup> परमशक्ति सम्पन्न होने से सूर्य में आरोपित सर्वदेवत्व सुसंगत है, तभी तो सायणाचार्य घोषणा करते हैं कि- "एकैव वा महानात्मा देवता स सूर्यः इत्याचक्षते।"

सौर देवताओं में ऋक्-संहिता सूर्य, सविता, पूषा, विष्णु और मित्र को प्रमुख देवता मानता है। बृहद्देवता में शौनक ने सूर्य के सात नामों का उल्लेख किया है- सविता, भग, पूषा, विष्णु, केशिन्, विश्वानर तथा वृषाकपि।<sup>११</sup> ऋक्-संहिता में सूर्य को महान् और व्यापक देवता माना गया है। इस नाम से सूर्य तथा उनके विविध रूपों के वाचक कई सौर देवताओं का बोध होता है यथा-

'सूर्य का भौतिक रूप 'सूर्य', सूर्य का प्रेरक रूप 'सविता', सूर्य का पोषक रूप 'पूषा', सूर्य का व्यापनशील रूप 'विष्णु' सूर्य का सहायक या रक्षक रूप 'मित्र' सूर्य का भजनीय रूप 'भग' और सूर्य का देदीप्यमान रूप 'विवस्वान्' है। इनके अतिरिक्त पाँच गौण सौर देवता भी हैं जिनमें सूर्यपरक कुछ विशेषताएँ विद्यमान हैं जो निम्नलिखित हैं- अर्यमन्, अज एकपाद्, वृषाकपि, केशिन् और विश्वानर। ये सभी देवता प्रकाश और तेज से सम्बद्ध हैं।

ऋक्-संहिता में 'सूर्य' के लिए आदित्य और आदितेय नाम की प्रयुक्त हुआ है।<sup>१२</sup> मैक्समूलर महोदय के अनुसार आदित्यगण सौर देवताओं पर्याय हैं।<sup>१३</sup> इसमें छह देवता निश्चित रूप से आदित्यों में गिने जाते हैं- मित्र, अर्यमन्, भग, वरुण, दक्ष और अंश।<sup>१४</sup> इन छहों देवताओं में प्रथम तीन स्वरूपगत विशेषताओं के कारण सूर्य का रूप मानना सम्भव है, किन्तु, अन्य तीनों को सूर्य का रूप मानना दुष्कर प्रतीत होता है ऋग्वैदिक आदित्यों में नामतः उल्लिखित सभी देवता दिव्य प्रकाश से सम्बद्ध होकर भी सूर्य के रूप प्रतीत नहीं होते हैं। अतः, आदित्यगण की गणना ऋग्वैदिक सौर देवताओं में करना समीचीन नहीं जान पड़ता है।

### सूर्य का 'सूर्य' रूप

वैदिक ऋषियों ने पाँच सूक्तों में सूर्य देवता की स्तुति की है।<sup>१५</sup> अन्य देवताओं के सूक्तों में इनके लिए दृष्ट मन्त्रों की संख्या इक्कीस है।<sup>१६</sup> यास्क ने सूर्य की कई व्युत्पत्तियों की हैं यथा-

(1) 'सूर्य' शब्द गर्त्यथक 'सू' से व्युत्पन्न है, कारण वे अन्तरिक्ष में गमनशील हैं।

४. निरुक्त- 7/4/8

५. निरुक्त-7/5/3-4

६. ऋ०- 9/114/3; 10/88/18

७. ऋ.- 8/81/2

८. ऋ०- 8/58/2

९. ऋ०-4/40/5

१०. ऋण-1/164/46

११. बृहद्देवता 2/20; 2/61-70

१२. ऋ०-1/50/13; 1/191/9; 10/88/11

१३. Max Muller, Logar p. 236

१४. ऋ०-2/27/1

१५. ऋ०-1/50; 1/115; 10/37 आदि

१६. ऋ०-1/164/46-7/4/40/5



(2) 'सूर्य' प्रेरणार्थक 'सू' से निष्पन्न है क्योंकि वे ही समस्त जगत् को प्रेरित करते हैं। (3) सूर्य का नाम 'सु' उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक ईर् से बना है कारण वे शोभन रूप से गमन करते हैं या वायु द्वारा भूलोक के प्रति प्रेरित किये जाते

हैं।<sup>१७</sup> सायण ने अन्यत्र भी सूर्य से सर्वप्रेरक तथा शोभनीय देव का ग्रहण किया है।<sup>१८</sup> स्वामी दयानन्द के मतानुसार अपने प्रकाश से प्रेरणा का हेतु सूर्यलोक या सकल विद्या-प्रकाशक जगदीश्वर 'सूर्य' हैं।<sup>१९</sup> तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार शोभन वीर्य सम्पन्न होने से सूर्य का सूर्यत्व है।<sup>२०</sup> सौर देवताओं में 'सूर्य' सर्वाधिक स्थूल हैं जिनका भौतिक सूर्य के साथ निकट का सम्बन्ध पर्याप्त स्पष्ट है। ऋषि वसिष्ठ ने उदित होते हुए सूर्य की स्तुति की है।<sup>२१</sup> वे प्रकाशित सूर्य को भी देखते हैं।<sup>२२</sup> ऋग्वेद में 'सूर्य' का अर्थ सूर्य देवता और भौतिक सूर्य दोनों है। सूर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक देवताओं का वर्णन है यथा- इन्द्र ने उन्हें जन्म देकर भासित किया।<sup>२३</sup> विष्णु ने सूर्य को उत्पन्न किया।<sup>२४</sup> इन्द्र और सोम ने उन्हें प्रकाश के साथ उपर स्थापित किया।<sup>२५</sup> इन्द्र और वरुण ने सूर्य को द्युलोक में उठाया।<sup>२६</sup> कभी वर्णन है कि सोम ने उत्पन्न कर उन्हें चमकाया।<sup>२७</sup> अन्य ऋचा में है कि मित्र और वरुण ने मिलकर उन्हें आकाश में बैठाया।<sup>२८</sup> अन्यत्र इसका श्रेय अग्नि को दिया गया है।<sup>२९</sup> यह भी कहा गया है कि धाता ने सूर्य और चन्द्रमा का निर्माण किया।<sup>३०</sup> अंगिरसों ने यज्ञ द्वारा सूर्य तथा चन्द्रमा को आकाश में स्थापित किया।<sup>३१</sup> वसिष्ठ सूक्त में सूर्य का जन्म उषा या उषाओं द्वारा माना गया है।<sup>३२</sup>

ऋग्वेद में सूर्य की माता अदिति है, अदितिपुत्र को आदित्य और आदितेय कहा गया है।<sup>३३</sup> इनके पिता द्यौः हैं, इस कारण ये दिवस्पुत्र हैं।<sup>३४</sup> इन्हें आकाशपुत्र और देवजात भी कहा गया है।<sup>३५</sup> सूर्य आरम्भ में समुद्र में विलीन थे तब देवताओं ने उन्हें बाहर निकाला था।<sup>३६</sup> अथर्ववेद में इनका जन्म वृत्र से बताया गया है।<sup>३७</sup> इसके कारण स्पष्ट किया गया है कि मेघरूप वृत्र से अनाच्छादित होकर सूर्य प्रकट होते हैं। 'पुरुष-सूक्त' मानता है कि विराट् पुरुष के चक्षु से सूर्य की उत्पत्ति हुई है।<sup>३८</sup>

१७. अथर्ववेद- 1/3/5	१८. ऋ०-10/158/1	१९. सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास पृ. 1070
२०. तै. ब्राह्मण 2/2/10/41	२१. ऋ०-7/66/14	२२. ऋ०-7/62/1
२३. ऋ०- 2/12/7; 3/44/2	२४. ऋ०- 7/99/4	२५. ऋ०-6/72/2
२६. ऋ०-7/82/3	२७. ऋ०-6/44/23/-9/97/41	२८. ऋ.-4/13/2
२९. ऋ.-10/3/2	३०. ऋ.-10/190/3	३१. ऋ.-10/62/3
३२. ऋ.-7/78/3	३३. ऋ.-1/50/13; 8/101/3	३४. ऋ.- 10/37/1
३५. ऋ.-10/37/1	३६. ऋ.-10/72/7	३७. अथर्ववेद-4/10/5
		३८. ऋ.-चक्षोः सूर्यो अजायत 10/90/13

सूर्य-सूक्त में सूर्य के सगे-सम्बन्धियों की भी कल्पना की गई है यथा- अन्तरिक्ष स्थानीय वायु तथा पृथ्वी स्थानीय अग्नि को सूर्य का भाई कहा गया है।<sup>३९</sup> जैसे भाई परस्पर भाग-ग्रहण करते हैं वैसे ही वृष्टि के लिए वायु रस ग्रहण करते हैं और रात्रि में सूर्य का तेज अग्नि ग्रहण कर लेते हैं अतः इनमें भाईचारा ही दिखता है। इसी मंत्र में सूर्य के 'सप्तपुत्र' की भी चर्चा है। सूर्य की किरणों में सात रंग हैं इनमें (सातो में) उनके पुत्र भाव की प्रतीति होती है। इनकी पत्नी उषा है।<sup>४०</sup> सूर्य की पत्नियाँ तीन हैं, ऐसा निरुक्त<sup>४१</sup> में तथा बृहद्देवता<sup>४२</sup> में वर्णन है- सूर्योदय से पूर्व उषा, मध्याह्न में सूर्या और अस्तकाल में 'वृषाकपायी' पत्नी की भूमिका में रहती हैं। सूर्य का भौतिक रूप द्युलोक में स्थित है।<sup>४३</sup> ये आकाश के आभरण रूप ही है।<sup>४४</sup> सूर्य उषा का अनुकरण वैसे ही करते हैं यथा कोई पुरुष स्त्री का <sup>४५</sup> एक ऋचा में सूर्य उदय की पुष्टि की गई है जिसमें प्रकाशित सूर्य का उशाओं के सामने स्तोत्र-श्रवण के बाद प्रसन्न होकर उदित होने का वर्णन है।<sup>४६</sup> सूर्योदय के पूर्व ऋषि होम करते हैं, पुनः सूर्योदय होता है अतः साधक उन्हें होम से ही उदित मानते हैं।<sup>४७</sup> अन्यत्र कहा गया है कि सूर्य उदयाचल को आक्रान्त कर उदित होते हुए अपनी माता पृथ्वी की ओर पूरब दिशा में जाकर फिर पिता द्युलोक की ओर शीघ्रता से जाते हुए अतिशोभायमान होते हैं।<sup>४८</sup> सूर्य की प्रकाशमयी दीप्ति आकाश और पृथ्वी के मध्य चलती है।<sup>४९</sup> सूर्य प्रतिदिन उगते हैं। सूर्य-प्रकाश के प्रसार द्वारा सभी प्राणियों पर समदृष्टि रखते हैं। उनकी समदृष्टि ऐसी है कि सभी प्राणियों को प्रतीत होता है कि सूर्य उनके सम्मुख ही उदित हो रहे हैं।<sup>५०</sup> इसी भावना की पुष्टि तैत्तिरीय-संहिता से भी होता है।<sup>५१</sup> यही कारण है कि मनुष्यों में सूर्य साधारण कहे जाते हैं।<sup>५२</sup> विश्वकल्याण के लिए ही उनके अश्व उनका रथ खींचते हैं।<sup>५३</sup>

सूर्य की ज्योति सर्वोत्तम मानी गई है उपासक इसे हविष् प्रदान करके प्राप्त करते हैं।<sup>५४</sup> अन्य सभी ज्योतियों में सूर्य ज्योति ही सर्वोत्तम और श्रेष्ठ है। शतपथ ब्राह्मण सूर्य को 'बृहज्ज्योति'<sup>५५</sup> कहते हैं तो यजुर्वेद संहिता में इन्हें 'श्रेष्ठ रश्मि' कहा गया है।<sup>५६</sup> सूर्य के लिए 'देव' विशेषण सर्वाधिक सार्थक है।<sup>५७</sup> सायण ने इसे 'द्योतमान' अर्थ में ग्रहण किया किया है।<sup>५८</sup> सूर्य का देवत्व 'देव' शब्द की व्युत्पत्तियों से सिद्ध होता है। यह यास्क मानते हैं।<sup>५९</sup> सूर्य प्रकाशमान और दीप्तिमान है अतः इनके लिए 'विभ्राट' विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है।<sup>६०</sup> इसी क्रम में 'शोचिष्केशम्' और 'भ्राजमानः' विशेषणों का भी औचित्य है।<sup>६१</sup> सूर्य परम तेजस्वी हैं और ऊपर होते हुए विशाल तेजों का आश्रयण करते हैं।<sup>६२</sup> इनकी ज्योति को 'विभु' और 'अहिंस्य' कहा गया है।<sup>६३</sup> इनका तेज विस्तीर्ण, अन्धकार नाशक और अविनाशी है।<sup>६४</sup> ये सभी वर्णन सूर्य की भौतिक दशा पर पूर्णतः सटीक उतरते हैं।

३९. ऋ.-1/164/1

४२. बृहद्देवता- 10/139/2

४५. ऋ.-6/51/1; 7/63/4

४८. ऋ.-10/189/1

५१. तै.सं.-6/5/4/2

५४. ऋ.-1/50/10

५७. ऋ.-10/51/1

६०. ऋ.-10/170/2

६३. ऋ.-8/101/2

४०. ऋ.-7/75/5 ४१. निरुक्त-12/8/2 और 17/7/2 और 12/5/3

४३. ऋ.-10/139/2

४६. ऋ.-7/63/3

४९. ऋ.-10/189/2

५२. ऋ.-7/63/1

५५. श.ब्रा.-6/3/1/15

५८. ऋ.सा.या.-7/15/1

६१. ऋ.-1/50/8; 7/163/4

६४. ऋ.-10/170/3

४४. ऋ.-6/51/1; 7/63/4

४७. ऋ.-10/37/5

५०. ऋ.-1/50/5

५३. ऋ.-7/66/14

५६. श.ब्रा.-1/1/3/16

५९. निरुक्त- 7/15/1

६२. ऋ.-7/62/1

सूर्य अपनी ज्योति से समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं।<sup>६५</sup> ये विश्व के प्रकाश होने से 'विश्वचक्षाः' है।<sup>६६</sup> वे द्युलोक के मध्य स्थित होकर पूर्वभाग और पृष्ठ भाग को भी प्रकाशित करते हैं।<sup>६७</sup> सूर्य प्रकाशकर्ता तथा अन्धकार निवारक भी हैं तभी तो कहा गया है- 'सूर्य के आगमन से नक्षत्र रात्रि के साथ ही भाग जाते हैं।<sup>६८</sup> सूर्य का सामर्थ्य यहाँ प्रकट होता है, तम के नाश में सूर्य प्रकाश का प्रमुख हाथ है।<sup>६९</sup> इनकी किरणें अन्धकार रूपी चर्म को जल में फेंक देती हैं।<sup>७०</sup> तथा वे अन्धकार को चर्म की भाँति लपेट लेते हैं।<sup>७१</sup> सूर्य का प्रकाशक तथा तम-निवारक रूप परस्पर पूरक है। सूर्य द्रष्टा हैं,<sup>७२</sup> अर्थात् समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं। सूर्य किरणें सर्वत्र प्रवेश करती हैं अतः इन्हें 'दूरेदृश' और उरूचक्षाः भी कहा गया है।<sup>७३</sup> वे सभी देखते हैं<sup>७४</sup> तथा सम्पूर्ण जगत् को देखने के लिए ही उदित हुए हैं।<sup>७५</sup> वे हमारे सारे कर्मों को भी देखते हैं।<sup>७६</sup> वे भले-बुरे (ऋजु-वृजिन) सभी कर्मों को देखते हैं।<sup>७७</sup> सबकुछ विविधत् तथा पूर्णतया देखने के कारण ही सूर्य को 'सुसंदृक्' भी कहा गया है।<sup>७८</sup>

सूर्य और चक्षु में एकरूपता स्थापित करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है कि मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु रूप सूर्य तीनों लोकों को अपने तेज से पूर्ण करते हैं।<sup>७९</sup> उन्हें मित्र और वरुण का चक्षु भी कहा गया है।<sup>८०</sup> इस चक्षु रूपी सूर्य की उत्पत्ति प्रजापति की चक्षु से हुई है।<sup>८१</sup> मनुष्यों के नेत्रों के साथ सूर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, कारण वे ही नेत्रों का तेज हैं। इसी कारण से ऋषि ने चक्षुओं के लिए 'चक्षु की याचना इनसे की है अर्थात् रूपोपलब्धि कारक चक्षु के लिए उनका अनुग्राहक तेज।<sup>८२</sup> तैत्तिरीय ब्राह्मण में सूर्य को अपने चक्षु में स्थित कहा गया है<sup>८३</sup> तो अन्य ब्राह्मणों में सूर्य को चक्षु और चक्षु को सूर्य कहकर इसकी पुष्टि की गई है।<sup>८४</sup> मृतजनों के नेत्रों से चक्षु (सूर्य) वापस जाने की धारण का मूल आधार यही है<sup>८५</sup> कि सूर्य ही हमारे दर्शक शक्ति के नियामक है। महर्षि अरविन्द के अनुसार- सत्य ही प्रकाश है, या प्रकाश ही सूर्य का बाह्य रूप है।<sup>८६</sup>

सूर्य के प्रेरक रूप को 'सविता' कहा गया है इन्हें 'प्रसविता' और 'सविता' कहा गया है।<sup>८७</sup> सूर्य ही हमारे उद्बोधक हैं, तभी तो इनके उदय होने के साथ ही हम अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं तथा उनके अस्त होने पर विश्राम करते हैं।<sup>८८</sup> यही सूर्य सभी व्यापारों के हेतु अर्थात् 'विश्वकर्मा' भी है।<sup>८९</sup> ब्राह्मण वाक्यों में सूर्य का यह रूप प्रतिपादित है।<sup>९०</sup>

६५. ऋ.-10/170/4	६६. ऋ.-10-50/2	६७. ऋ.-10/139/2
६८. ऋ.-10/50/2	६९. ऋ.-10/37/4	७०. ऋ.-4/13/4
७१. ऋ.-7/63/1	७२. Ragozin, VI, p. 216	७३. ऋ.-1/50/3
७४. ऋ.-10/37/1; 7/35/8	७५. ऋ.-1/50/2	७६. ऋ.-1/50/7
७७. ऋ.-6/51/2	७८. ऋ.-10/158/5	७९. ऋ.-1/115/1
८०. ऋ.-7/63/1	८१. ऋ.-10/90/13	८२. ऋ.-10/158/4
८३. तै. ब्राह्मण 3/10/8/5	८४. श.ब्रा.-3/2/2/13	८५. ऋ.-10/16/3
८६. Aurobindo, sv, pp-300, 464-72		८७. ऋ.-7/63/2, 3
८८. ऋ.-10/37/9	८९. ऋ.-10/170/4	९०. गो. ब्राह्मण (उ.) 1/23

सूर्य वृष्टि के कारण है अतः 'रसादान' और रश्मियों द्वारा 'रसधारण' कर्म सूर्य द्वारा ही सम्पादित होते हैं।<sup>९१</sup> ये रश्मियों द्वारा आर्द्रता का हरण करते हैं।<sup>९२</sup> सूर्य के लिए 'हरितः' विशेषण (रसहरणशील) भी प्रयुक्त हुआ है।<sup>९३</sup> इनकी रश्मियाँ जल का दोहन और पान करती है।<sup>९४</sup> जलग्राही ये किरणें 'मध्वदः सुपर्णः' हैं।<sup>९५</sup>

एक ऋचा में सूर्य को 'उदकप्रद' या 'उदकवान्' अर्थ में अर्णवः कहा गया है।<sup>९६</sup> चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः' की व्याख्या करते हुए सायण ने 'वृषभ' को 'वर्षिता' सूर्यदेव कहा है।<sup>९७</sup> वृष्टि प्रदाता होने के कारण सूर्य शस्योत्पादक भी हैं। एक ऋचा में वर्णन है कि माता पृथ्वी की इच्छा को जानकर पिता आदित्य अपने गर्भस्थ उदक को उसे प्रदान करते हैं यह रस अनेक प्रकार की औषधियों के उत्पादन में समर्थ है।<sup>९८</sup>

सूर्य अहोरात्र के कर्ता है। दिन-रात का विभाजन आदित्य की गति के अधीन है। वे दिन के साथ रात्रि को उत्पन्न करते आकाश से जाते हैं।<sup>९९</sup> जब सूर्य हरितवर्ण अश्वों (रसहरणशील रश्मियों) को अन्यत्र संयुक्त करते हैं तब रात्रि का अन्धकार फैलता है।<sup>१००</sup> वे दिन में विलक्षण तेज धारण करते हैं तथा रात्रि में कृष्णवर्षा तन को अपगमन द्वारा रात्रि में निष्पादित करते हैं।<sup>१०१</sup> सायणचार्य ने एक मन्त्र में रात और दिन को सूर्य के दो सिर और सात किरणों को सूर्य के सात हाथ कहा है।<sup>१०२</sup> सायण और सातवलेकर महोदय ने स्पष्ट किया है कि सूर्य बारह माह में बारह रूप धारण करते हैं, पाँच ऋतुओं के रूप में पाँच पैर (अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन-रात तथा मुहूर्त) वाला और छः ऋतुओं रूपी छह अरों वाला है।<sup>१०३</sup> छहों ऋतुओं को 'देवताः' या सूर्य से उत्पन्न भी कहा गया है।<sup>१०४</sup> सूर्य अन्न और बल के दाताओं में श्रेष्ठ हैं।<sup>१०५</sup> इसलिए उनसे धन की याचना की गई है।<sup>१०६</sup> सूर्य रोग निवारक, विषय योग जनित सुख तथा अपाप के दाता है।<sup>१०७</sup> ये अपने तेज, दिवस, भानु, शैल्य, उष्णता आदि द्वारा मार्ग तथा घर सर्वत्र सुखकर हों ऐसी प्रार्थना की जाती है।<sup>१०८</sup> ऋग्वेद सूर्य को पीड़ादायक या संतापकारी कदापि नहीं मानता।<sup>१०९</sup> उदय काल में उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं के समक्ष मनुष्यों को निष्पाप घोषित करें।<sup>११०</sup> सूर्य से 'भद्र' के साथ चिरकाल तक वृद्धत्व-प्राप्ति की कामना की गयी है।<sup>१११</sup> आगे सूर्य से चिरकाल तक देख सकने की इच्छा और पूर्णायु की कामना की गई है।<sup>११२</sup> यही कामना सौ वर्ष तक देखने और जीने की प्रार्थना की गई है।<sup>११३</sup> अन्य ऋचा में सूर्य से कामना की गई है कि हम प्रीतियुक्त, शुभमन सम्पन्न, उत्तम दर्शन वाले, सुसंतान युक्त निरोग निरपराध तथा नित्य सूर्य दर्शन की बात कही गई है।<sup>११४</sup>

९१. निरुक्त-7/11/2

९२. बृहद्देवता 2/19

९३. ऋ.-1/50/8

९४. ऋ.-1/164/7

९५. ऋ.-1/164222

९६. ऋ.-7/63/2

९७. ऋ.-4/58/3

९८. ऋ.-1/164/8

९९. ऋ.-1/50/7

१००. 1/115-14

१०१. ऋ.-1/115/5

१०२. ऋ.-4/58/3

१०३. ऋ.-1/164/12

१०४. ऋ.-1/164/14

१०५. ऋ.-10/170/2

१०६. ऋ.-7/62/3; 10/37/10

१०७. ऋ.-10/37/11

१०८. ऋ.-10/37/10; 8/18/9

१०९. Macdonell, VM, p.31

११०. ऋ.-7/60/1

१११. ऋ.-10/37/6

११२. ऋ.-10/378

११३. ऋ.-7/66/16

११४. ऋ.-10/37/7

सूर्य 'अनिष्ट निवारक' अर्थ में वरुण है- त्वं वरुणं पश्यसि।<sup>११५</sup> सूर्य जिस तीव्रता से तन का नाश कर प्रकाश फैलाते हैं उसी तेज से अन्नाभाव, अधर्म रोग-व्याधि और दुःस्वप्नादि नाश भी करते हैं।<sup>११६</sup> दुःखहर्ता रूप में भी उनकी स्तुति की गई है।<sup>११७</sup>

एक सम्पूर्ण सूक्त में सूर्य को विषनाशक के रूप में देखते हैं तथा विषयुक्त मैत्रावरुणि अगस्त्य उनकी स्तुति करते हैं।<sup>११८</sup> पूर्व दिशा में उदित होते हुए सूर्य अनेक दृष्ट तथा अदृष्ट समस्त विषधरों का नाश करते हैं।<sup>११९</sup> असुरों के हन्ता सूर्य (दुष्प्रवृत्तियों के प्रतीक असुर) दुष्प्रवृत्ति के अपरहणकर्ता है।<sup>१२०</sup> सूर्य जब यथारूढ़ होकर निकलते हैं तो उनके समीप कोई भी असुर नहीं रहता है।<sup>१२१</sup> ब्राह्मणों में भी सूर्य के असुरहन्ता स्वरूप का वर्णन है।<sup>१२२</sup>

सूर्य का एक रूप 'रोगनिवारक' का भी वर्णित है तभी तो 'प्रस्कण्व ऋषि' तीन ऋचाओं से इनकी स्तुति करके हृदय रोग ओर पीलिया जैसे रोग को नष्ट करने की प्रार्थना करते हैं। वे पीलिया (हरियाणम्) के रंग को हो तों वृक्षों और वनस्पतियों में रख दें, ऐसी प्रार्थना करते हैं।<sup>१२३</sup> इन्हें 'तरणिः' विशेषण से भी जाना जाता है कारण ये उपासकों को रोग से तारनेवाले हैं।<sup>१२४</sup> सूर्य पोषक और रक्षक रूप में 'पूषन्' और 'मित्र' नाम से स्तुत्य हैं। प्रकाश तथा वृष्टि करके सबका पालन करने के कारण पलित<sup>१२५</sup> और रक्षक होने के कारण 'गोपा' भी कहे जाते हैं।<sup>१२६</sup> ये वायु द्वारा प्रेरित होकर स्वयं प्रजाओं का पोषण और रक्षण करते हैं।<sup>१२७</sup> पोषण करने के कारण ही इन्हें विश्वसंरक्षक' कहा गया है।<sup>१२८</sup> सूर्य सामान्य रूप से तो रक्षण करते ही हैं<sup>१२९</sup> शत्रुओं के तीक्ष्ण आयुधों से भी हमारी रक्षा करते हैं।<sup>१३०</sup> वे विश्व के व्रत की रक्षा भी करते हैं तथा महिमा प्राप्त करते हैं।<sup>१३१</sup> ये 'गौ' और 'पतंग' की भाँति गमनशील है।<sup>१३२</sup>

सूर्य का रथ एक चक्रवाला, चक्र तीन नामियों से युक्त अजर और अशिथिल है, जिसपर सारे लोक स्थित हैं।<sup>१३३</sup> सूर्य की द्वादश आरोंवाला यह चक्र द्युलोक के चारों ओर बार-बार घूमता है।<sup>१३४</sup> अन्य मन्त्र में उस चक्र में छह अराएँ हैं।<sup>१३५</sup> कहीं 'सप्तचक्र'<sup>१३६</sup> तो कहीं रथ को एकचक्र भी कहा गया है।<sup>१३७</sup> सूर्य का रथ संवत्सर ही है।<sup>१३८</sup> इसपर 720 जोड़े पुत्र हमेशा रहते हैं।<sup>१३९</sup> संवत्सर में 720 अहोरात्र निवास करते हैं (360 दिन + 360 रात)<sup>१४०</sup>। इनके रथ को एक अश्व 'एतश' खींचता है<sup>१४१</sup> या अनगिनत घोड़े खींचते हैं जिनका रंग हरा है।<sup>१४२</sup> सात हरित अश्व द्वारा<sup>१४३</sup> रथ खींचने का भी वर्णन आया है।<sup>१४४</sup> निघण्टु के

११५. ऋ.-1/50/6

११६. ऋ.-10/37/4

११७. ऋ.-10/37/6

११८. ऋ.-1/191 तथा बृहद्देवता 4/63

११९. ऋ.-1/191/89

१२०. ऋ.-8/101/12

१२१. ऋ.-10/37/3

१२२. ता. ब्राह्मण 1रु3रु2; शतपथ ब्राह्मण 1/3/4/8

१२३. ऋ.-1/50/11-2

१२४. ऋ.-1/50/4

१२५. ऋ.-1/161/1

१२६. ऋ.-1/164/31

१२७. ऋ.-10/170/1

१२८. ऋ.-10/170/4

१२९. ऋ.-10/158/1

१३०. ऋ.-10/158/2

१३१. ऋ.-10/37/5

१३२. ऋ.-10/189/1,3

१३३. ऋ.-1/164/11

१३४. ऋ.-1/164/12/164/13

१३५. ऋ.-1/164/14

१३६. ऋ.-1/164/12

१३७. ऋ.-1/175/4; 4/30/4

१३८. ऋ.-10/170/4

१३९. ऋ.-10/158/1

१४०. ऋ.-10/158/2

१४१. ऋ.-7/63/2

१४२. ऋ.-1/115/3; 10/37/3

१४३. ऋ.-1/50/8; 1/164/2

१४४. ऋ.-5/29/5; 4/13/3



अनुसार 'हरित' आदित्य के वाहक अश्वों का नाम है।<sup>१४५</sup> रथ में जो सात रश्मियाँ अधिष्ठित होती हैं वे ही सात व्यापनशील अश्व हैं।<sup>१४६</sup> सूर्य के रथ में किरण रूपी घोड़ों के रंगों के कारण सात नाम है। एक ओर रथ में सात घोड़े जुते होने की बात है और दूसरी ओर सात नामोंवाला एक ही घोड़ा इस रथ को खींचता है, यह कहा गया है।<sup>१४७</sup> एक अन्य ऋचा में सूर्य को उषा द्वारा लाया गया श्वेत 'अश्व' कहा गया है।<sup>१४८</sup> ब्राह्मणों में भी सूर्य की कल्पना एक अश्व के रूप में की गयी है।<sup>१४९</sup> सूर्य रथ के अश्वों को यदि सूर्य-रश्मियाँ स्वीकारते हैं तो कई अनिश्चितता समाप्त हो जाती है तथा अश्वों के स्वरूप वर्णन की संगति भी बैठ जाती है।<sup>१५०</sup> सूर्य की अश्वरूपी किरणें कल्याणकारी जल-हरण करनेवाली, विलक्षण, आनन्दकारी और सतत गतिशील हैं। वे द्युलोक और पृथ्वीलोक पर तत्काल फैल जाती हैं।<sup>१५१</sup>

सूर्य की महिमा सर्वत्र गायी गई है, क्योंकि वे तेज बल और वीर्य द्वारा महान् हैं।<sup>१५२</sup> वे देवताओं के मध्य सत्य ही अपनी महिमा के कारण महान् हैं।<sup>१५३</sup> वे महान्, सर्वोत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ और मुख्य देव होने से सबके स्वामी हैं।<sup>१५४</sup> ये उनका देवत्व और महत्त्व ही है कि मनुष्यों के कार्यों के मध्य में अपने विस्तीर्ण रश्मिजाल को समेटते अस्त हो सकते हैं।<sup>१५५</sup> ये देवों में देव है।<sup>१५६</sup> सूर्य के समान ही सूर्य के अश्वगण भी अन्य की अपेक्षा के बिना स्वयं ही सरणशील हैं।<sup>१५७</sup> सूर्य सभी के कर्ता है जैसे अन्य विशेष देवता है।<sup>१५८</sup>

सूर्यदेव स्थावर और जंगम सब के आत्मा हैं।<sup>१५९</sup> तभी तो ये विश्वात्मा हैं। जीवन के लिए इनकी महत्ता और उपादेयता के कारण ही इन्हें प्रजाओं का 'प्राण' भी कहा जाता है।<sup>१६०</sup> इनकी महिमा की चरम सीमा है- उनका सर्वदेवत्व या ब्रह्मत्व। बृहद्देवता में इन्हें इन्द्रं मित्रं वरुणम् आदि कहा गया है। ये नाना नाम एक सूर्यदेव की ही महिमा के द्योतक हैं।<sup>१६१</sup> सूर्य अन्य देवताओं का रूप धारण कर सकते हैं या अन्य देवता सूर्य से ही अस्तित्ववान् हैं। इनका सर्वदेव रूप उनके, ब्रह्मत्व की पुष्टि करता है। यही कारण है कि सूर्य स्तुतियों में कभी-कभी दूसरे देवताओं के नामों का प्रयोग सूर्य के लिए किया गया है यथा<sup>१६२</sup> जातवेदस्, अग्नि, आदित्य, सविता, पूषा, अदिति, अर्यमा, वरुण आदि। बलदेव उपाध्याय<sup>१६३</sup> के मतानुसार सूर्य के त्रिविध रूप हैं। ऋषि ने अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के तीन रूप बताए हैं- उत् उत्तर = उत्तर, उत्तम = उत्तम, जो माहात्म्य में क्रमशः बढ़कर हैं। सूर्य की वह ज्योति जो भौतिक अन्धकार का निवारण करती है वह 'उत्' है। जो ज्योति देवों के मध्य देवरूप में निवास करती है वह ज्योति 'उत्तर' है। इनदोनों से विशिष्ट ज्योति 'उत्तम' है। ये तीनों शब्द सूर्य के कार्यात्मक, कारणात्मक और कार्यकारण से अतीत अवस्था के द्योतक हैं।

१४५. ऋ.-1/164/3

१४६. ऋ.-1/164/3

१४७. ऋ.-1/164/2

१४८. ऋ.-7/77/3

१४९. तै. ब्राह्मण- 3/9/23/2, श.ब्रा.-7/3/2/10

१५०. ऋ.-1/115/3

१५१. सातवेलकर ऋ. सु.भा. 1/115/3

१५२. ऋ.-8/101/11

१५३. ऋ.-8/101/12

१५४. ऋ.-10/37/1; 1/164/7

१५५. ऋ.-1/115/4

१५६. ऋ.-1/50/10

१५७. ऋ.-7/66215

१५८. ऋ.-7/62/1

१५९. ऋ.-1/115/1, श.ब्रा. 1/3/2/9

१६०. वैदिक विज्ञान तथा भारतीय संस्कृति चतुर्वेदी पृ. 171

१६१. बृ.देवता-4/42 ऋ.-1/164/46

१६२. ऋ.-1/50/1; 10/88/101/11 आदि

१६३. ऋ.-1/50/10 बलदेव उपाध्याय वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ. 597-8

इस प्रकार हम पाते हैं कि विविध नाम, रूपों में भी सूर्य तेज ही निहित है। इस विश्वात्मा को जानने हेतु जितना भी भटको अन्ततः यही प्रकट होता है-

‘तोहर सरिस एक तोहिं माधवा’

सन्दर्भ-सूची

1. ऋग्वेदः (स्कन्दस्वामी, उद्गीथ के भाष्यों के साथ), सम्पादक विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान वि. 2021
2. ऋग्वेद संहिता - सायणचार्य विरचित भाष्य समेता, वैदिक संशोधन मंडल, पुण्यपत्तन 1933-51 तक
3. तैत्तिरीय ब्राह्मणम्- (कृष्णयजुर्वेदीयम्) सायण भाष्य सहितम् आनन्दाश्रम पूजा 1938
4. निरुक्तम् निघण्टुपाठसमुपेतम्, दुर्गाचार्य व्याख्यासहितम्, वेंकटेश्वर मुद्रणयन्त्रालय, मुम्बई 1982।
5. बृहद्देवता- शौनक सं. रामकुमार राय, चौखम्बा, वाराणसी।
6. उपाध्याय बलदेव- वैदिक साहित्य और संस्कृति, काशी 1958।
7. चतुर्वेदी गिरिधर शर्मा, वैदिक विज्ञान तथा भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्; पुराण परिशीलन-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् 1970



व्याख्याता, मगही विभाग, बोधगया



प्राचीन इटली से प्राप्त रेखाचित्र, जिसमें राम को सीता और लक्ष्मण के साथ वन जाते हुए दिखाया गया है। इससे इटली में रामकथा की ख्याति के प्रमाण मिलते हैं।

# वैष्णव सन्त तुलसीदास की अन्तर्यात्रा

डॉ. राजेश्वर नारायण सिन्हा

(गतांक से आगे)

## सन्त-महिमा-वर्णन

यह प्रसंग दोहा संख्या 34 से 42 तक छन्दों में हैं। इनमें 38वें दोहे के बाद दो छन्द चौपाइयों के हैं। यह प्रसंग वस्तुनिष्ठ है। इसमें 'तुलसी भनिति' का पद तर्कसंगति की सार्थकता का आत्मबोध कराता है। इसमें सन्त सम्मान सकारण वर्णित है।

सन्त की महिमा, एक मुख वाले तुलसी कैसे वर्णन करें। जबकि, विमल-विवेक शेष और महेश भी जिसका वर्णन नहीं कर सके। पूरी पृथ्वी को कागज का पत्र बनाकर, सिन्धु को मसी बनाकर और कल्पवृक्ष को लेखनी बनाकर भी गणेशजी लिखना आरम्भ करें, तो भी वह पूरा नहीं लिखा जा सकता। यह विवरण अत्यन्त अतिशयोक्तिमूलक है। इसमें असिद्धास्पद व्यंजनाएँ हैं।

उनके माता-पिता धन्य हैं, और वे पुत्रवर भी धन्य हैं, जो जैसे-तैसे भी राम को भजनेवाले हैं। जिनके मुख से धोखे से भी राम निकलता है, तुलसी के तन का चाम उनके पग की पनही बने, ऐसा कवि का मत है।

तुलसीदास की वैचारिक प्रगतिशीलता का यह दोहा उदात्ततम है-

तुलसी भगत सुपच भन्नो, भजै रैनदिन राम।  
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि का नाम॥३८॥

तुलसी इसी भाव की स्पष्ट करते हैं-  
अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन को अस्थान।

तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न, अरु धान॥३९॥

तुलसी अपनी वैचारिकता का प्रमाण

इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

अति अनन्य नो हरि को दासा।

रटै नाम निसिदिन प्रति स्वासा॥

तुलसी तेहि समान नहिं कोई।

यह नीके देखा सब कोई॥

अपना अभिमत देते हुए कहते हैं-

जदपि साधु सब ही विधि हीना

तदपि न समता के न कुलीना॥

वह कित रैन नाम उच्चरै।

वह नित मान अगिनि महँ जरै।

दासरता एक नाम में, उभय लोक सुख त्यागि।

तुलसी न्यारो ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि॥४१॥

अगला प्रकाश शांति वर्णन है'

इस प्रकाश में कवि-मानस, जीव और जगत् के सम्बन्ध का सार संग्रह में प्रगत है। चेतना का सुन्दरतम स्वरूप भाव क्षेत्रीय है। इसे शान्ति कहा गया है। यह परमोदात्त मानस की निरुपाधि दशा है। इस दशा का वर्णन अवधारणात्मक है।

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूजन मानु।

दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ग्यानु॥४३॥

ग्यान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषण त्याग।

त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग॥४२॥

इन दोहों में अस्तित्व की शोभा का चिन्तन किया गया है। रैनि, दिवस प्रकृति के स्वरूप हैं। इन्दु रात की कालिमा को चाँदनी में बदल देता है ओर शीतलता तथा वैमत्य के

कारण कालमान की शोभा का कारण बनता है। दिवस सूर्य के अस्तित्व और गति के साथ काल मान की दिव्यता में उतार-चढ़ाव प्रकट करता है। ये सारे प्रकरण आकर्षण के कारण हैं। जीव भी जगत् का चेतन उपादान है। चेतना में जब ऊर्ध्वभावों की शोभा उभरती है तो भक्त्यात्मक संवेग में वह आत्मभाव का प्रकाश प्राप्त करता है। वह इष्ट का ध्यान एकाग्रचित्त से करता हुआ आत्मा और परमात्मा का मिलन करता है। इस कर्म में वह चित्तवृत्ति की अनन्त आसक्तियों का त्याग करके मानस की शान्त दशा में अमल होता है। यह चेतना के ग्रहण और त्याग का सूक्ष्म चिन्तन है।

कथ्य का बिन्दु स्थिर करके (शांतिपद की प्राप्ति करके) कवि आत्मानुभूति पर वाणी का प्रसाद संचित कर रहे हैं।

अमल अदाग शांतिपद सारा।  
सकल कलेस न करत प्रहारा॥  
तुलसी उर घारै जो कोई।  
रहै अनंद सिंधु महँ सोई॥ चौपाई-३  
त्रिबिध पाप संभव जो तापा।  
मिटहिं दोष दुख दुसह कलापा॥  
परम सांति सुख रहै समाई।  
तहँ उतपात न भेदैं आई॥ छन्द चौ. ४  
तुलसी ऐसे सीतल संता।  
सदा रहैं एहि भाँति एकंता॥  
कहा करै खल लोग भुजंगा।  
कीन्हें गरम सीम जो अंगा। चौ. छ.५  
अति सीतल अतिही अमल, सकल कामना हीन।  
तुलसी ताहि अतीव गति, वृत्ति शांति लय लीन॥४८॥

ऊपर के आठ छन्द काव्य की एक इकाई है। दोहा में तथ्य-संचय के उपरान्त उपलब्ध रसानुभूति का प्रसार, चौपाई की तीन इकाइयों में आत्मभाव की आस्वाद्य दशा तक

लाकर, पुनः दोहा में समापन वाक्य की भावसंवृति की गयी है। यह जीवन-दशा की गुणातीत इकाई का वर्णन है।

पुनः कथ्य की दूसरी इकाई आरम्भ होती है-

जो कोइ कोप भरे मुख बैना।  
सन्मुख हतै गिरा-सर पैना॥  
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं।  
सो सीतल कहिए जगमाही॥

व्यक्तित्व की उपलब्धि परीक्षण द्वारा स्थित की गयी है। इसकी व्याप्ति दोहे में कही गयी है-

सात दीप नव खंड लौं तीनि लोक जग माहिं।  
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥४०॥

इसकी प्राप्ति कहाँ से संभव है इसपर आगे कहा गया है।

जहाँ सान्ति सद गुरु की दई।  
तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥  
सकल काम वासना बिलानी।  
तुलसी बहै सांति सहदानी॥  
तुलसी सुखद सांति को सागर।  
संतन गायो करन उजागर॥  
तामे तन-मन रहै समोई  
अहं अगिनि नहिं दाहैं कोई॥५२॥  
अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।  
तुलसी बाँचै अंतजन, केवल सांति अधार॥५३॥  
महा सांतिजल परसि कै, सांत भए जन जोइ।  
अहं अगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोई॥५४॥

साधक की उपलब्धि का वर्णन इस प्रकार है-

तेज होत तन तरनि को, अचरज मानत लोइ।  
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥५५॥

इस ध्रुवसत्य को स्थापित करके भी अनवधान होना अच्छा नहीं है-

जद्यपि सीतल सम सुखद जग में जीवन प्राण।  
तदपि सांति जल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥५६॥  
उपलब्धियाँ प्रयत्न की सिद्धि है। इसमें  
अति अनल का स्पर्श करके भी यह नहीं  
भूलना चाहिए कि इसमें बाडवानल है, जो  
पावक अपना तेज लेकर इसमें अर्न्तहित हो  
गया है।

जग-जीवन की सामान्य दशा का वर्णन  
इस प्रकार है-

जरै बरै अरु खीझि खिझावै।  
राग द्वेष महँ जनम गंवावै॥  
सपनेहुँ सांति नहीं उन देही।  
तुलसी जहाँ-जहाँ ब्रत एही॥५६॥

इस प्रकार का लोकजीवन इन्हीं कारणों से  
अशान्त है। करणीय का संकेत इस प्रकार है-

सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।  
सोई सूर, सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥५७॥  
सोइ ग्यानी, सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।  
तुलसी जाके चित भई राग-द्वेष की हानि॥५८॥

ऐसे लुब्धकों की चित्रवृत्ति का वर्णन  
कवि करते हैं-

राज द्वेष की अग्नि बुझानी  
काम क्रोध वासना नसानी  
तुलसी जबहिं सांति गृह आई।  
तब उर ही उर फिरी दोहाई॥६०॥  
फिरी दोहाई राम की गे कामादिक भागि  
तुलसी ज्यों रबि के उदय तुरत जात तम लाजि॥६१॥  
यह बिराग संदीपिनी, सुमन सुचित सुनि लेहु।  
अनुचित बचन विचारि कै जस सुधारि तस देहु॥

इन समापन वाक्यों में हृदय की प्रसन्नता  
में राम की महत्ता की अनुगूँज की अनुभूति है।

कवि ने आरंभ में इसे ज्ञान का सार  
कहा। अंत में सुजन को सुचित से ग्रहण करने  
का आग्रह करते हुए महाकवि ने ग्राह्य वचनों  
को ग्रहण करने और अग्राह्य को अपनी रुचि

के अनुरूप ग्रहण करते हुए अपनी अंतर्यात्रा  
को निर्मल मन से रामधुनि में समाप्त किया है।

यह लघु पुस्तिका तुलसीदास के सम्पूर्ण  
व्यक्ति की अभिव्यक्ति है। इसका आरम्भ  
भक्ति-चेतना में वैमल्य से और प्रथम प्रकार  
राममय-मानस की अवधारणा के संवर्द्धन से  
आत्मस्वीकृति है। इस प्रकाश का चिन्त्य  
संत-स्वभाव है जिसे उन्होंने ग्रहण किया था।  
रामानुराग संवर्द्धन के लिए हृदय को किस  
प्रकार की चैतन्य गति से क्या प्रभाव पड़ता है,  
इसका परिणाम जगह-जगह पर कहा गया है।  
ये आत्मानुभूतियाँ हैं। इन्हें काव्य का रूप देने  
के लिए इच्छा और क्रिया की गति दर्शाना ही  
कवित्व है। सन्त की महिमा कवि का वस्तुनिष्ठ  
मनोभूमि पर मूल्यांकन है।

शान्ति-वर्णन तीसरा प्रकाश है। इसमें  
विजय की सूक्ष्मता को निरपेक्ष रूप में नहीं  
कहा जा सकता है; इसलिए वृत्तियों का  
उदात्तीकरण, राम की ध्वनि का प्रकाश और  
काव्यभाव की प्रतिष्ठा के उपरान्त बुद्धितत्त्व से  
अहंबोध को समाप्त करते हुए सुजनों का  
सम्मान कवि का लक्ष्य है। इसमें आत्मज्ञान के  
सार को कवि ने छन्दोबद्ध किया है। सटीक  
उपमानों, प्रतीकों और लोकोक्तियों से इसकी  
काव्यभाषा सरल और काव्यार्थ भी सरलतम है।

एक वाक्य में यह अध्यात्मक सम्मत  
साधु व्यक्तित्व के उन्नयन की मानसिकता का  
चिन्त्य धरातल व्यवस्थित करता है।



ॐ नमः शिवाय  
॥ शिवताण्डव स्तोत्र ॥

अनु. गोपाल भारतीय

जिनके जटा-विपिन से निकला, गंगाजल का प्रबल प्रवाह।  
शीतल करता व्याल माल-विष, दग्ध गले का भीषण दाह।।  
डमरू डम डम नाद निनादित, ताण्डव-नृत्य प्रचण्ड महान्।  
किये भरे उत्साह, करें शिव, अमित हमारा नित कल्याण।।

जटा-कटाह-तरंग-वल्लरी, भ्रमती सुरसरि वेग प्रचण्ड।  
जिनके भाल-ललाट लपट-सी, धग्-धग् जलती अग्नि अखण्ड।।  
बाल-शशांक विराजमान है, जिनके सिर सर्वोपरि भाग।  
नित्य निरन्तर उन शिव के प्रति, बढ़े हमारे उर अनुराग।।

जिनके अंक विराज उमा के, अलंकार-मणि तीव्र प्रकाश।  
दिग् दिगन्त आलोकित करके, जिनके उर भरते उल्लास।।  
जिनकी कृपा कटाक्ष निरन्तर, कट जाते झट सब भव फन्द।  
उन शिव शम्भु दिगम्बर के प्रति, मम मन भरे विनोदानन्द।।

जिनकी जटा नागमणि-पिंगल, दिशांगना मुख कुंकुम राग।  
प्रभा-पुंज अनुलेपन करता हुआ मनाता हुलसित फाग।।  
महामत्त गजराज-चर्म जो, धारण करते वस्त्र समान।  
भूतनाथ मेरे कृपालु भव, भरे विनोद हृदय-मन-प्राण।।



नटराज शिव

जिनको करते शीश झुकाये, इन्द्रादिक सब देव प्रणाम।  
जिनकी चरण पादुकाएँ, सुर-मुकुट कुसुम रंजित अभिराम।।  
सकल जटायें नागराज के, हार बँधी हैं जिनके भाल।  
शम्भु चन्द्रशेखर वे मेरी, अचल सम्पदा करें विशाल।।

वेदी पर जिनके ललाट की, जलती ज्वालामुखी मशाल।  
जिनने भस्म किया रति पति को, इच्छा करते ही तत्काल।।  
करते सुरपति लोकपाल सब, जिनका नमन सहित जयकार।  
धरे सुधाकर कला मुकुट वे, शम्भु भरें मम भाण्डागार।।



क्षितिन्द्रनाथ मजूमदार की पेंटिंग (1914)  
विकीमीडिया कॉमन्स से साभार

जिनके भाल पट्ट पर धग् धग्, जलती यज्ञकुंड की आग।  
हवन किया दुर्घर्ष काम को, मान मात्र आहुति का भाग।।  
जो पार्वती कुचाग्र-पत्र पर, चित्रांकन के रचनाकार।  
एकमात्र वे अनुपम, मेरे, बने त्रिलोचन प्राणाधार।।

मेघमाल से घिरी अमावस, अर्धरात्रि के तमस् समान।  
जिनके कण्ठ नीलिमा अंकित, कालकूट विष-चिह्न महान्।।  
जो शंकर गजचर्म लपेटे, धारण किये जगत् का भार।  
चन्द्र कलाधर गंगाधर वे, करें सम्पदा मम विस्तार।।

नीलकमल-वन नीलप्रभा की, हरिणी की-सी छवि का धाम।  
जिनका शोभित नीलकण्ठ है, जो त्रिपुरारि शुद्ध निष्काम।।  
भंग दक्षमख भस्म काम को, गजबध अन्धक असुर निपात।  
भव-भव यम-भय हर, हर शंकर, शिव भजता मैं सौँझ-प्रभात।।

जो शिवशंकर सर्वमंगला, विमद उमा के अनुपम रूप।  
कला-कदम्ब मंजरी-रस को, पीने को हैं मधुप अनूप।।  
जो शिव काम, त्रिपुर गज अन्धक, दक्ष यज्ञ का किये विनाश।  
भव-भय, यम-भम, हर जो शंकर, 'भारतीय' मैं उनका दास।।

जिनके शीश सवेग फूटते, विषधर नागों के फुफकार।  
क्रमशः अग्नि कराल भाल पर, धधक फैलती अपरंपार।।  
जिनका ताण्डव; धिमि-धिमि बजते गुरु गम्भीर मृदंग निनाद।  
होता क्रमशः तीव्र भयंकर उनकी जय! जो हर अवसाद।।

पत्थर शिला-बिछौना कोमल, सर्प पथा मणि मुक्ता माल।  
रत्न-मृतिका सुहृद-शत्रु में, तृण-तरुणी अधराधर लाल।।  
प्रजा और भूपाल नृपति में, कब होगा मेरा समभाव?  
और भजूँगा नतमस्तक मैं, शम्भु सदाशिव भरकर चाव।।

जिनके भव्य ललाम भाल हैं, जो शशि शेखर परम उदार।  
उमा सहित उन शिव शंकर को, दत्तचित्त तजकर कुविचार।।  
सुरसरि तट निकुंज कोटर में, रहकर शीश उभय कर जोड़।  
अश्रुपूर्ण विह्वल 'शिव' जपता, कब होऊँगा सुखी विभोर?

जो नर करता नित्य पाठ है, उक्त स्तोत्र का हृदय पसार।  
स्मरण तथा वर्णन करता है, बन पावन, तरता संसार।।  
शिव-सुभक्ति वह अतिरल पाता, गति न प्राप्त करता विपरीत।  
शिव-चिंतन तो प्राणि मात्र के, हरता कुमति विमोह अनीति।।

पाठ दशानन-रचित स्तोत्र का, जो करता 'संध्या' अवसान।  
उस नर परम भक्त पर होते, अति प्रसन्न शंकर भगवान्।।  
तब उसको अनुकूल सम्पदा, गज-हय-वसुधा-भवन-विमान।  
'भारतीय' वे अवढरदानी करते अविचल सहज प्रदान।।

इति गोपाल भारतीय (कवि) अनूदित  
लंकेश शिवभक्त रावण विरचित  
श्रीशिवताण्डव स्तोत्र।।



## लेखकों से निवेदन

2015 ई. से धर्मायण को अपने नये रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है। अगले अंक से शोधपरक आलेख के साथ पाठकों द्वारा मिले सुझावों के अनुरूप कुछ स्थायी-स्तम्भ भी प्रकाशित किये जायेंगे। इन स्थायी-स्तम्भों का स्वरूप इस प्रकार है:

1. नमसा विधेम- संस्कृत के श्लोकों में देवस्तुति, हिन्दी अनुवाद सहित, अप्रकाशित
2. देवस्तुति- हिन्दी में छन्दोबद्ध प्राचीन अथवा आधुनिक भक्तिपरक कविताएँ।
3. शोधपरक आलेख
4. प्रेरक-पुरुष। सन्तों, महापुरुषों की जीवनी।
5. प्रेरक-प्रसंग
6. अलौकिक अनुभूति
7. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। आयुर्वेद से घरेलू नुस्खे
8. ज्योतिष-चर्चा
9. आस्था के केन्द्र
10. संस्कृत भाषा-परिचय
11. धार्मिक शंका-समाधान
12. धार्मिक पुस्तक समीक्षा
13. धरोहर
14. पाठकीय प्रतिक्रिया
15. तीर्थयात्रा-वृत्तान्त।

अतः सुधी लेखकों से निवेदन है कि उक्त स्तम्भों के लिए अपने स्तरीय, मौलिक, अप्रकाशित एवं अप्रसारित आलेख हमें प्रेषित करें। रचनाओं की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। आपकी रचनाओं में राजनीति की कोई बात नहीं होनी चाहिए। सामाजिक सद्भाव, धार्मिक उदारता, भारतीय गरिमामयी संस्कृति आदि की झलक हमारी पत्रिका की पहचान है। टंकित या हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार्य हैं। टंकित आलेख [mahavirmandir@gmail.com](mailto:mahavirmandir@gmail.com) पर भेज सकते हैं। लेखक अपना फोटो एवं साहित्यिक परिचय अवश्य भेजें। यदि आलेख में कोई फोटो डाला गया हो तो उसका .jpg फाइल ईमेल से अवश्य भेजें। रचनाओं के लिए मन्दिर की ओर से सम्मानकी की व्यवस्था है। अपना पत्राचार पता अवश्य लिखें।

इनके अतिरिक्त 'धर्मायण' के पाठक नियमित रूप से महावीर मन्दिर समाचार परिक्रमा से भी अवगत होते रहेंगे।



# चरैवेति

प्रो. चन्द्रशेखर द्विवेदी 'भारद्वाज'

चरैवेति = चर एव इति = गच्छन् भव इति, अर्थात् भ्रमणशील होओ। सोओ नहीं, बैटो। बैटो नहीं, उठो। उठो ही नहीं, चलते रहो। पुण्य पंथ प्रशस्त है, अग्रसर होवो। जीवन चलने का नाम है न कि रुकने का।

अंत पहाड़ों का है, लेकिन अभिमानों का अंत कहाँ?

संघर्षों का अंत कहाँ है? संधानों का अंत कहाँ?

अंत सिद्धियों का है लेकिन निर्माणों का अंत कहाँ?

अंत देह का हो सकता है, पर प्राणों का अंत कहाँ?

सीमाओं से विश्रामों से हम को हरदम लड़ना है,

चढ़े हिमालय की चोटी पर फिर भी उपर चढ़ना है। (पं. रामदयाल पाण्डेय)

बालकृष्ण शर्मा की नदी कहती है कि उसे किसी ने राह नहीं दिखाई। उसने अपने ही अपना मार्ग बनाया। वह कई शिलाओं को ढकेलती हुई आगे बढ़ी थी। कितनी बार वह निर्भीकता से बढ़ी और कई उँचे प्रपातों से गिरी। वनों, कन्दराओं से भूलती-भटकती, उत्साह से फूलती, प्रत्येक बाधा, विघ्न को टोकर लगाती वह बढ़ती गयी, तभी तो वह पहुँची सागर के पास, जहाँ सागर फेन की माला लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

किसी को भी मंजिल पाना है तो 'चरैवेति' को अपनाना होगा। अपनी धुन के पीछे चलना होगा। विपदाओं से घबराना तो कायरों का काम है। पथ पर अहर्निश आगे बढ़ना होगा।

'चरैवेति' ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ का मन्त्रांश है। इसके ऋषि हैं प्रातः स्मरणीय पूर्वज यज्ञवल्क<sup>1</sup> ऋषि के पुत्र ऋषि महिदास ऐतरेय। इस लघुतम उद्बोधन में महत्तम संदेश है, अबाध गति से बढ़ने का, कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त होने का। यह श्रीमद्भगवद्गीता का मानो सारामृत है। यह संसार कर्म-क्षेत्र है, यहाँ जड़, चेतन सभी कर्म हेतु बाध्य हैं, इसीलिए सभी कर्मरत हैं। सभी एक निश्चित मार्ग में क्रियाशील हैं, सबका अपना-अपना व्रत है और सबका अपनी-अपनी धुन। पशु-पक्षी, कोमल मलय-पवन, सब अपने-अपने कार्य में तल्लीन हैं।

यदि सूर्य संसार में शोभा सरसा रहा है, तो सोम सुधा बरसा रहा है। एक छोटा तिनका भी अपने कार्य में तल्लीन है। प्रकृति का कण-कण कर्मशील है। वह भी कर्तव्य-पथ में प्रमाद नहीं करता। जीवन भर आतप सहकर वसुधा पर छाया करता है, तुच्छ पत्र को भी स्वकर्म-जैसी तत्परता है ?

गत्यात्मकता का नाम जीवन है, गतिहीनता का नाम मरण। चलायमान मेघ में जीवन है। बहती हुई नदी जीवन्त लगती है, सूखी नदी मृत जैसी दीखती है। राम जंगल जाकर ही मंगलमय होते हैं। वे वन क्या जाते हैं, मानो 'बन जाते' हैं। विश्राम किए बिना हनुमान् समुद्र सन्तरण करते हैं, और माता सीता का पता लगा पाते हैं। कृष्ण मथुरा पहुँचकर द्योतित होते हैं। 'चरैवेति' का उपदेश पाकर अर्जुन ऊर्जा से भर जाते हैं। थका मन उत्साह से भर जाता है, संघर्ष के लिए उद्यत होते हैं। गाण्डीव चमकने लगता है, और अन्ततः विजयश्री को प्राप्त होते हैं।

1. महिदासैतरेयर्षिसन्दृष्टं ब्राह्मणं तु यत्। आसीद् विप्रो यज्ञवल्को द्विभार्यस्तस्य द्वितीयामितरेति चाहुः।

(ऐतरेय ब्राह्मण, सुखप्रदावृत्ति)

‘जीवन का झरना’ में बाबू आरसी प्रसाद सिंह क्या ‘चरैवेति’ से प्रेरित नहीं?

वे लिखते हैं-

चलना है, केवल चलना है जीवन चलता ही रहता है।

मर जाना ही रुक जाना है निर्झर यह झरकर कहता है।।

अंग्रजी के कवि टेनिसन ‘द ब्रुक’ कविता में मानो वही दुहरा रहे हैं:-

And out again I curse and flow  
To join the brimming river,  
For men may come and men may go  
But I go on for ever.

काँटों पर चलकर ही बहार की खुशबू मिलती है। अतः कभी भी हार मानकर रुकना नहीं, ‘चरैवेति’ का संदेश है।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ में एक रोचक गाथा आती है, हरिश्चन्द्र गाथा। इस गाथा में हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित को इन्द्र उपदेश देते हैं।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादु उदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।।चरैवेति।। ऐ. ब्रा० 1/35

अर्थात् क्रियाशील मानव मनोवांछित फल प्राप्त करता है, वह स्वादु उदुम्बर (गूलर का फल) को प्राप्त करता है। वह यथेष्ट फल का अधिकारी होता है। संसार में सूर्य की श्रेष्ठता और पूज्यता का यही कारण है कि वे सदा विचरणशील हैं। वे कदापि आलस्य नहीं करते, उन्हें थकावट नहीं होती।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वं तिष्ठति तिष्ठतः।

शेते निपद्यमानस्य चराति चरितो भगः।। चरैवेति।।

बैठे हुए व्यक्ति का सौभाग्य बैठ जाता है। उठे हुए का भाग्य उठता जाता है। सोये हुए का भाग्य सो जाता है। चलते हुए का भाग्य दिन-दिन बढ़ता जाता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

उतिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।। चरैवेति।। ऐ. ब्रा० 1/33

कलि अर्थात् सोया हुआ, करवट लेता द्वापर, उठा हुआ त्रेता तथा भ्रमण करता हुआ सत्ययुग उत्कृष्ट है। तात्पर्य, मनुष्य यदि सोता है तो कलिकाल में होता है। करवट लेते समय वह द्वापर में होता है, उठते हुए त्रेता में रहता है। जब वह चलता है तभी उसके जीवन में सत्ययुग होता है।

वेद में वर्णित है कि ऋषि ऐतरेय का जीवन संघर्ष का जीवन रहा। बिहारी ऋषि यज्ञवल्क ने निम्नवर्गीया कन्या इतरा से विवाह किया। इन्हें ऐतरेय नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ दिनों के बाद इतरा और ऐतरेय दोनों प्रेम से वंचित हो गए। माता इतरा ने अपनी कुलदेवी मही (पृथ्वी) का आह्वान किया और उनकी प्रार्थना की। देवी ने प्रकट होकर बालक ऐतरेय को उपदेश किया- ‘हार न मानो, आगे बढ़ो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा, तुम चलते रहो। प्रगति की राह में पिता के रहने न रहने का कोई असर नहीं पड़ता। तुम महर्षि के पुत्रों में श्रेष्ठ होगे।’ ऐतरेय आशीर्वाद ग्रहण कर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। अनेक ऋषियों के यहाँ जाकर उन्होंने अध्ययन किया। बाद में यही ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ के रचयिता हुए। मही के दास होने कारण इन्हे ‘महिदास’ कहा गया। ‘चरैवेति’ पर चलते रहनेवाले ऋषि महिदास ऐतरेय को नमन।

हिन्दी विभाग, आर. जे. एस. कॉलेज, दिघवारा, सारण, (बिहार)

लालभूषण निलयम्, ग्राम- विश्वम्भरपुर, पत्रा.- सुतिहार, थाना- डेरनी, जिला- सारण



यात्रा-गाथा

## श्रीगुप्तधाम की यात्रा

श्री घनश्याम दास 'हंस'



बिहार प्रान्त में कैमूर जिला में प्राकृतिक सौन्दर्य, रोमांच एवं धार्मिक आस्था से भरपूर गुप्तधाम है। यहाँ विशाल गुफा में विशाल शिवलिंग के रूप में भगवान् शिव विराजते हैं। इसके अतिरिक्त नाचघर, ब्रह्मटाँकी, कामधेनु, घुड़दौर गुफा आदि दर्शनीय स्थान भी इसी विस्तृत गुफा के अन्दर लगभग ८०० फीट के घेरे में अवस्थित हैं। इस स्थान की रोमांचकारी यात्रा एवं सम्बद्ध जनश्रुतियों पर यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं- साधु घनश्याम दास हंसजी। लेखक का वक्तव्य है कि उनके पिता स्वामी शोभनाथ दास 'हंस' इस धाम पर अतीत में रहते थे और लेखक को वहाँ की घटनाएँ सुनाया करते थे। अतः लेखक ने पिता के मुँह से सुनी गाथा तथा वर्तमान यात्रा का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है।

वरदानी शिव के  
वरद हस्त से  
बरसता आशीर्वादी  
दिव्य आभा का साक्षात् दर्शन  
नयी सुबह की नयी किरण में  
करते ही ये कृतकृत्य हो गया।  
उनके साक्षात् स्वरूप दर्शन लाभ  
पाकर मैं धन्य-धन्य हो गया।

अहा! दिव्य प्रकाश पुंज.  
..... अहा! मनमोहक स्वरूप...  
अहा! देवाधिदेव महादेव का  
सामीप्य..... अद्भुत दिव्य-दर्शन  
के संगम पर कभी बालरूप

हनुमानजी दाहिने में मुद्गर (सोटा) लिए बायें हाथ से पकड़ खींचते हुए नभमण्डल में उड़ चले। देखते ही देखते कोहरे के आवरण को फाड़कर ऊपर चले गये, जहाँ सूना आकाश था और ललाई छोड़ चुके सूर्यदेव थे। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो हंस पर बैठी माता गायत्री का दिव्य स्वरूप का दर्शन लाभ मिलता रहता।



गुप्तधाम : विहगावलोकन

भगवान् के सामीप्य लाभ की झाँकी माता-पिता के आशीर्वाद से, बचपन से, मुझे मिलता रहा। संकटमोचन बालहनुमान के साथ नभमण्डल में विचरण हुए, दिव्य ज्योतिर्लिंग शिव स्वरूप, माता गायत्री के विहंगम दर्शन का सामीप्य प्राप्त हुआ। जीवन के घटित अद्भुत घटनाओं में, प्रभु के विहंगम दर्शन की छाँव में पहाड़ों, झरनों, फूलों-फलों

और उषा की लाली में अपने आप को खोते चले गये। दिन ढलता चला, रात बीत गयी। नयी उषा की नयी पहल में अखिल भारतीय रविदास नवनिर्माण मंच के सौजन्य से पिताश्री के आध्यात्मिक कर्मक्षेत्र श्रीगुप्तधाम की दिव्य यात्रा का लाभ हुआ।

श्रीबाबा भोलेनाथ की असीम कृपा से श्रीगुप्तधाम के प्रांगण में मुझे भी अपने मन का उद्गार कलमबद्ध तरीकों से पेश करने का शुभ अवसर मिला है। यह आनन्दकन्द भगवान् श्रीरामजी की असीम कृपा की देन है। आइये, मैं अपनी भाषा में लिपिबद्ध कर श्रीगुप्तधाम की यात्रा-वृत्तान्त का वर्णन करता हूँ।

बिहार-प्रान्त, पटना-प्रमण्डल, कैमूर जिला, मोहनियाँ अनुमण्डल के अन्तर्गत दुर्गावती रेलवे स्टेशन (राष्ट्रीय राज मार्ग सं.-2) से दक्षिण महरो गाँव के शिव मन्दिर से साध्वी पार्वती देवी, साध्वी झंझारी देवी, संत घनश्याम दास हंस, संत लालचन्द दास निराला, संत सीताराम दास तथा श्रद्धालु विनय कुमार “बालाजी” श्रवण कुमार एवं महेश कुमार के साथ आरक्षित वाहन से श्रीगुप्तधाम के लिए हमारी यात्रा आरम्भ हुई।

बोलो काशी विश्वनाथ महादेव की जय!

आदि शक्ति भवानी माँ दुर्गा की जय!

संकटमोचन हनुमान की जय!

सियावर रामचन्द्र की जय!

भोले भण्डारी श्रीगुप्तधाम की जय!

डीह सायर की जय!!

जयकारा लगाते सन्तों से भरा हमारा वाहन जी.टी. रोड पर दौड़ने लगी। कुछ ही पल में हमलोग डिडिखिली बाजार होते हुए मोहनियाँ (भभुआ रोड रेलवे-स्टेशन) चाँदनी चौक पर पहुँचे।

मोहनियाँ से गुप्तधाम पर जाने के लिए चार प्रमुख रास्ते हैं-

- (1) सासाराम, चेनारी से उगहनी घाट
- (2) कुदरा चेनारी से उगहनी घाट
- (3) दुर्गावती, चैनपुर (हरसुब्रह्म), मुण्डेश्वरी,

वेलाव से दुर्गावती जलाशय होते हुए दुर्गावती नदी मार्ग से गुप्तधाम और

(4) मोहनियाँ माता सतीजी का दर्शन कर जयकारा लगाते भभुआ, बेलाव, आर. डी. चौरासी (सबार) चेनारी होते हुए उगहनी घाट पर पहुँच गीताघाट आश्रम के साध्वी श्रीमाताजी के सानिध्य में वाहन खड़ी कर दी।

हल्का जलपान कर हम सभी श्रद्धालु सन्तों के साथ पैदल मार्च करते हुए श्रीगुप्तधाम के लिए पर्वतीय ऊँचाईयों को नापते चल पड़े। उगहनी घाट से लगभग 500 से 700 फीट खड़ी ऊँची घाटी पर चढ़ने लगे। ऊबड़-खाबड़ एवं दुर्गम खड़ी घाटियाँ लगभग आधा किलोमीटर चढ़ने के बाद 8 किलोमीटर छोटे-छोटे सात पहाड़ियों को लाँघते हुए पुनः पर्वतों की खड़ी घाटी लगभग आधा किलो मीटर सामने सीधे नीचे उतरे। तत्पश्चात् दो किलोमीटर बीहड़ जंगलों में सुग्गी नदी एवं नालाओं को लाँघते दुर्गम पगडण्डियों से गुजरते हुए श्रीगुप्तधाम के प्रांगण में प्रवेश कर श्री भोले भण्डारी बाबा विश्वनाथ की शरण में पहुँचे।

सामूहिक भजन-कीर्तन तथा संध्यावन्दन कर भोजनापरान्त रात्रि विश्राम को उद्यत हुए सभी सन्त अपना-अपना आसन लगाकर चादर ओढ़ लम्बवत् पड़ गये।

पुरातत्त्व एवं स्थापत्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्राचीन गुफा मन्दिर, गुप्ता धाम चेनारी प्रखण्ड मुख्यालय से लगभग 22 किलोमीटर की दूरी पर कैमूर पहाड़ी शृंखलाओं की गोद में अवस्थित है। घनघोर भयावह जंगलों के बीच श्री गुफा मन्दिर के ध्वस्त भग्नावशेषों की खोज भगवद् आस्था से जुड़े तपस्वी सन्तों ने की। पौराणिक दन्त कथाओं की स्पष्ट अनेक झँकियों भग्नावशेष आज भी देखने को मिलता है।

कैमूर की कमनीय पर्वत शृंखलाओं की गोद में अवस्थित श्रीगुफा मन्दिर, गुप्तधाम प्राचीन काल से ही सिद्ध मनीषियों का तपःस्थली रही है। इसकी छवि

अत्यन्त मनोहर एवं प्राकृत हैं और शैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्रबिन्दु रहा है। श्रीधाम से 1.5 किलोमीटर दूर काफी ऊँचाई से नीचे गिरते हुए यहाँ एक आकर्षक बरसाती जलप्रपात है, जिसके ठीक नीचे मन को शीतलता प्रदान करने वाला एक मनोहारी कुण्ड है। जो शीतल कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। शीतल कुण्ड के निकट एक छोटी-सी गुफा में संकटमोचन हनुमानजी तथा प्रस्तर शिवलिंग स्थापित है। श्रद्धालु सन्त और आगन्तुक शैलानी सबसे पहले शीतल कुण्ड में स्नान करने के बाद शिवलिंग पट जल चढ़ा भगवान् शिव के साथ हनुमानजी का भोग-पूजन-अर्चन करने के बाद ही श्रीफल युक्त प्रसाद फूल-मालाएँ तथा टॉर्च लेकर गुफा द्वारा से श्रीगुफा मन्दिर में दर्शन हेतु प्रवेश करते हैं।

प्रातः 7 बजे वैदिक विधि से भोग लगाकर पूजा अर्चना एवं आरती उपरान्त श्रद्धालुओं के लिए श्रीगुफा द्वार पट खोल दिया जाता है और शाम 7 बजे शयन आरती पश्चात् पट्ट बन्द कर दिया जाता है।

श्रीगुफा द्वार से अन्दर लगभग 100 फीट सामने आगे बढ़ते ही पतालगंगा का दर्शन होता है। नाक के सीध में 300 फीट की दूरी तय करते पर मध्य चौराहा यानी चार मुहानी गुफा मिलता है। उसके दाहिनी तरफ की गुफा में 300 फीट आगे बढ़ने पर शिवलिंग और उसके ठीक ऊपर से स्वच्छ जल की बून्दों से टपकती अनन्त प्रस्तर जटाओं का दर्शन लाभ मिलता है। यहीं पर भगवान् शिव को फूल-मालाएँ अर्पित कर, भोग चढ़ा श्रीफल पधार स्तुति गान करते हैं; अन्त में जयकारा लगाते हैं।

उस शिवलिंग के सामने के आगे करीब 100 फीट की दूरी तप करने पर भगवान् शिव संजीवनी और कामधेनु का दर्शन

ऊपर की दाहिनी दीवाल में होता है। इसके बाद भी श्री गुफायें अनन्त दूरी तक जाती हुई दिखाई देती है पर आक्सीजन के अभाव में दुर्गम होने से कोई भी श्रद्धालु आगे नहीं जाता।

वहाँ से 400 फीट वापस पुनः मध्य चौराहा पर पहुँचता है। नाक के सीध में आगे बढ़ते हुए 400 फीट की दूरी तय करने पर चौराहा यानी चार मुहानी गुफा मिलता है। बायें तरफ नाचघर, दाहिने तरफ ब्रह्मटॉकी तथा सामने वाली गुफा में नीचे पातालगंगा का पुनः दर्शन होता है। सामने के तथा दाहिने के सुरंग पथ आज भी अगम्य है। कोई भी श्रद्धालु अन्दर नहीं जाते हैं। और अन्त में यही से भगवान् शिव का जयकारा लगाकर सन्त मण्डलियों के साथ सफलतापूर्वक वापस 400 फीट दूरी तप कर मध्य चौराहा गुफा से होकर श्रीगुफा द्वार की ओर लोग अपना रुख कर लेते हैं। 400 फीट की दूरी पार करते हुए तथा भगवान् शिव का स्मरण करते सभी श्रद्धालु सन्त जन बाहर निकल आते हैं।

हमलोग भी स्वच्छ स्थल पर सुखकर बैठक के बाद हल्का नास्ता कर आराम करने लगे। देवाधिदेव महादेव शिवजी की अनेक अद्भुत लीलाओं पर भी चर्चा छिड़ गयी।



प्रवेशद्वार : श्रद्धालुओं द्वारा अर्पित घंटियाँ

श्रीगुफा मन्दिर के स्थानीय संतों ने बताया कि श्रीगणेश भगवान् श्रीज्योतिर्लिंग, श्री नन्दी बैल तथा अन्य भग्नावशेष श्रीगुफा मन्दिर के अन्दर तथा बाहर पाये जाने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। श्रीगुफा मन्दिर का अध्ययन अत्यन्त जरूरी है। यहाँ श्रद्धालु शैलानियों तथा सन्तों के लिए पथ निर्माण कर रास्ता को सुलभ बनाने की आवश्यकता है। शुद्ध पेयजल, रोशनी, धर्मशाला तथा अस्पताल की व्यवस्था अपेक्षित है।

स्थानीय आस्था के अनुसार भष्मासुर नामक एक प्रभावशाली प्रतापी राजा हुआ जिसे अपनी शक्ति पर बड़ा घमण्ड था। उसने ब्रह्माजी के समीप जा निवेदन किया कि हे प्रभु! आप कोई ऐसी उपाय बताइये जिससे मेरी शक्ति कभी क्षण न हो। उसकी वाणी को सुनकर ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस दुष्ट को उलझी गुत्थी में सुलझा दूँ तो यह बड़ा अनर्थ करेगा। नहीं नहीं मैं इसका कोई सहायता नहीं करूँगा। अपनी चातुरी से तपस्या की सरल विधि बताकर बम-बम भोले भण्डारी बाबा के पास भेज दिये।

भस्मासुर प्रसन्नचित होकर भगवान् शिव के साक्षात् स्वरूप को हृदय से धारण कर कठोर तपस्या करने लगा। उसकी कठोरतम तपस्या को देखकर इन्द्र भी डर गये कि यह तपस्वी कहीं बाबा भोलेनाथ से वर प्राप्त कर कहीं मेरा सिंहासन न छीन ले। उसकी तपस्या भंग करने के अनेकानेक प्रयास कर इन्द्र भी हार गये। दृढ़ संकल्पित भष्मासुर की कठोर तपस्या से धरती आकाश हिलने लगा। उसकी अडिग श्रद्धा-भक्ति और लगन से भगवान् भोले भण्डारी शिवजी अति प्रसन्न हो उसके सामने प्रकट हुए।

उसकी खोई हुई चेतना को वापस कर वर माँगने को कहा। ब्रह्माजी भस्मासुर के स्वभाव को भाँपकर मन ही मन डर गये कि कोई ऐसी अकाट्य वर न माँग ले जिससे हम सभी देवताओं का जीवन मुश्किल हो जाये। शीघ्रतिशीघ्र भगवती सरस्वती को भेज उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया।

भगवान् शिव के बार-बार कहने पर कलुषित बुद्धि से भस्मासुर ने कहा- 'हे प्रभु! यदि आप हम पर खुश हैं तो यह वर दीजिए की हम जिस वस्तु व्यक्ति पर हाथ रखे वह जलकर भस्म हो जाये।

'तथास्तु!' (ऐसा ही होगा) कहकर भगवान् शिव ने उसे अमोघ शक्ति प्रदान कर दी। वह खुश होकर उमा सहित भगवान् शिव को पहला शिकार बनाने की बात सोचने लगा और भगवान् शिवजी की तरफ बढ़ने लगा।

भगवान् शिव उसकी मन्शा को समझ गये और माता पार्वती के साथ भागने लगे। भष्मासुर भगवान् शिव पर ही उनकी दी हुई वरद शक्ति का परीक्षण करना चाहा। इनके दिये गये वरदान सच सफल होते हैं तो सिर पर हाथ रखते ही शिव भस्म हो जायेंगे और विश्वसुन्दरी पार्वती हमारी होगी। घृणित विकार से ग्रस्त भस्मासुर दौड़कर पकड़ना चाहा, परन्तु भगवान् शिव तीव्रगति से भाग चले। वह पीछा करता रहा और ये भागते-भागते कैमूर पर्वत शृंखलाओं के बीच गुफा में जा छिपे।

ऐसा विचित्र कौतुक देख सभी देवता विस्मित हो परेशान हो गये। किसी को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है कि अब आगे क्या होगा। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु मोहनी का रूप धारण कर श्रीगुफा द्वार पर भस्मासुर को रोकते हुए उसके सामने प्रकट हो गये और कहा कि मैं वहाँ इन्तजार कर रही हूँ और आप हैं दूसरी जगह भागे जा रहे हैं।

इतना सुनते ही भस्मासुर रुका और मोहनी जाल में फँस गया। मोहिनी के इसारे पर वह नाचने लगा। चर्मोत्कर्ष पर पहुँचते ही मोहनी ने इसारा किया- 'बाये हाथ कमर पर और दाहिने हाथ सिर पर।' जड़बुद्धि के प्रभाव से शिव के वरदान को भूलकर भस्मासुर वैसे ही नाचने का प्रयास किया। बाया हाथ कमर पर और दाहिना हाथ सिर पर रखते ही वह स्वयं जलकर भस्म हो गया। सभी देवी-देवता मोहनी स्वरूपधारी भगवान् विष्णु पर पुष्प वर्षाकर सर्वत्र जयजयकार करने लगे।

मान्यता है कि भगवान् शिव को यह स्थान इतना रमणीक लगा कि इसके बाद भी भगवान् विष्णु के बार-बार बुलाने पर भी शिवजी बाहर नहीं निकले। जिससे यह स्थल, श्रीगुफा मन्दिर, गुप्त धाम के नाम से आज भी आस्था का केन्द्र है।

कैमूल की पहाड़ियों में स्थित श्रीगुफा मन्दिर

गुप्त धाम ,  
श्रीमण्डलेश्वर धाम  
ताराचण्डी आदि  
श्रीधाम पूर्वी भारत  
का मूलतः कभी  
शाक्त-सम्प्रदाय के  
केन्द्र रहे होंगे।

अपनी इस  
यात्रा में पिताजी द्वारा  
ज्ञात अनेकाअनेक  
अद्भुत घटनायें  
अचानक याद हो  
आयीं और मैं गुनगुनाने  
लगा। तभी एक सन्त  
पूछा कि कभी  
आपके पिताश्री भी  
इस पावन गुप्तधाम  
गुफा के प्रसिद्ध

पुजारी थे। यहाँ के मनोहारी छवियों, दर्शनीय-स्थलों तथा अन्य विशेषताओं का जिक्र आपसे अवश्य किये होंगे। हनमें से कुछ संस्मरण सुनाकर हम सबका मार्ग प्रशस्त करें।

सभी सन्तों के उत्सुक स्वर मेरे हृदय को स्वतः स्पर्श कर गया और मैंने भगवत्कथा प्रसंग को आगे बढ़ाया।

मैंने कहा कि श्रीगुप्तधाम की चौहद्दी पर नजर डाले तो आप देखेंगे कि उतर में झुड़कुड़ा गाँव, दक्षिण में बाण्डा गाँव, पूरब में अनेक पर्वत शृंखलाएँ तथा पश्चिम में कदहर गाँव और दुर्गावती जलाशय है। श्रीगुफा मन्दिर के प्रबन्धन व्यवस्था को

चलानेवाले ज्ञात कुछ मनीषियों/महन्तों के नाम निम्नांकित हैं- नेपाली बाबा, पंजाबी बाबा, परमानन्द बाबा, नारायण दास, नारदा दास, मुरली दास, अखिलानन्द बाबा, प्रताप बाबा, स्वामी शोभनाथ दास हंस, विष्णु बाबा, रामजी बाबा, बालक दास बाबा, नन्दु गिरी तथा गिरिवरानन्दजी महाराज।



मार्ग की कठिन चढ़ाई

श्रीगुप्तधाम गुफा मन्दिर प्राचीन काल से ही संतों का तप स्थली संगम रहा है। वहाँ निर्भय होकर कोटि-कोटि संत-मनीषियों ने तपस्या की है। पूजन अर्चन आरती करते हुए स्वास्थ्य लाभ हेतु विचरण करते थे, करते रहे और करते रहेंगे, स्थानीय लोगों की ऐसी मान्यता है।

एक बार की बात है। सन्तों-महन्तों में ख्यातिप्राप्त श्री प्रताप बाबा के सान्निध्य में स्वामी शोभनाथ दास हंसजी महाराज ने श्री गुफा मन्दिर, गुप्तधाम के प्रसिद्ध पुजारी की ख्याति आध्यात्मिक सेवा से प्राप्त कर ली थी। नियमित भगवान् का भोग लगा, पूजन-अर्चन तथा आरती करते हुए आनन्दतिरेक

के कई वसन्त बीच चुके थे। ग्रीष्म ऋतु की तपती ज्वाला के झंझावती तूफानों में निकटतमा कुआँ, चूआ और झरने सूख गये थे। मन्दगति से आता पसेई झरने का पानी ही सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा करता था। स्वच्छ विधि से शुद्ध पसेई जल किसी श्रद्धालु को दिया गया तो वह मुँह फेर चल दिया। श्री प्रताप बाबा सहज भाव में कहा कि सभी जगह तो ढबइल पानी है, स्वच्छ जल है कहाँ?

बहुत से सन्त आध्यात्मिक भाषा में कई सप्ताहों तक इस गुत्थी को सुलझाने का कार्य करते रहे। एक तो पानी की किल्लत, दूसरे बाहरी लोगों के बड़े-बड़े कटु बोल, पुजारी के हृदय को घायल कर देता था। स्वच्छ जल का तलाश और नियमित भोग लगाने तथा पूजन-अर्चन-आरती की प्रतिष्ठा रखने का तलाश जारी था। जल संकट की विषम परिस्थितियों में कोई भी वहाँ रहना नहीं चाहते थे। जंगली जानवरों का कहर भरा दहशत चारों तरफ फैला था। पर्वतीय ऊँची शृंखलाओं पर बाघों का गर्जन हृदय-विदारक होता था। बाघ, भालू, बन्दर, जंगली सुअरों तथा हिंसक जानवरों से घनघोर जंगल पटा-भरा था।

ऐसी विषम परिस्थितियों में देवों के देव महादेवी श्री गुफा मन्दिर में भगवान का भोग लगाना, पूजन-अर्चन तथा आरती करना मुश्किल था। प्रभु के प्रताप से गुफा मन्दिर द्वार व प्रांगण के आस-पास जल-संकट को छोड़कर जंगली जानवरों का कोई भय नहीं था।

श्री गुप्तधाम के संत निवास में जल संकट मडराने लगा। स्वच्छ जल के आभाव में श्रद्धालु साधु सन्त जन श्री गुप्तधाम को छोड़कर भागने पर मजबूर हो गये। ग्रीष्म ऋतु की तपीश में, लू के थपेड़ों में, उष्म पर्वतों का तपना प्राणघातक-सा बन गया। चार सन्तों की मण्डली में महन्त श्री प्रताप बाबा, स्वामी शोभनाथ दास हंस, गोवर्धन दास तथा खेदन सिंह उपस्थित थे। श्रीगुफा मन्दिर धाम में भगवान का भोग लगा, पूजा अर्चना तथा आरती

स्वामी शोभनाथ दास हंस करते थे। श्री प्रताप बाबा के मुख से निकली हुई वाणी “स्वच्छ जल है कहाँ” का कोई जबाव नहीं था। शर्मा मौन थे। श्री हंस बाबाजी ने एक दोहा पढ़ा-

**रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सूना।  
पानी गये न उबरै, मोति मानुष चून।**

श्री प्रताप बाबा भी गर्मजोशी के साथ एक शेर पढ़ा-

**करनी करे तऽ पुत्र हमारा, कथनी करे तऽ नाती।  
रहनी चले तऽ गुरु हमारा मैं रहनी का साथी॥**

साधु खेदन सिंह ने कहा-

‘पानीवाला ही तो पानी की कीमत समझता है अब और देर क्या पुजारीजी? अब आपसे स्वच्छ जल चाहिए।’

स्वामी शोभनाथ दास हंसजी के सामने बहुत बड़ी चुनौती खड़ी हो गयी। निकट जंगल के सभी कुआँ, चूआ और झरने सुख गये थे। कहीं-कहीं पसेई चलता था तो अभिराम गति से लागों द्वारा जल कुण्ड से जल निकालते समय बाल्टियों की मार से पानी ढबइल (गंदा) रहता था। बहुत सारे जल स्रोत स्थल पर बाबा श्रीहंसजी गये वहाँ जल लेने की प्रतिस्पर्धा में कठोरतम भीड़ खड़ी थी। मौका तलाश देखते समझ जाते कि यहाँ का भी जल अब स्वच्छ नहीं है और आगे बढ़ जाते थे। इसी तरह नौ किलोमीटर की ज्ञात-अज्ञात दूरी को तय करते हुए बाघों की के बीच दुर्गम स्थानों में पहुँच गये। बाघों की हृदय विदारक गुराहट और उनकी दुर्गन्धों को सहते, प्राणों को हथेली पर रख महेश पुरवा के बीहड़ों से स्वच्छ जल लेकर वापस लौट आये।

शीतल व स्वच्छ जल से प्यास बुझाकर श्री प्रताप बाबा ने पुजारी श्री हंसजी को पीठ थपथपाकर आशीर्वाद दिया- ‘आपके सौजन्य से जो हमें स्वच्छ शीतल जल प्राप्त हुआ उसके लिए हमसब आपके आभारी हैं। आपकी सर्वत्र जय जयकार रहे।’

एक क्षेत्रीय ब्राह्मण श्रद्धालु को यह प्रशंसा नागवार गुजरी जिसे भाँपते हुए श्री प्रताप बाबा ने



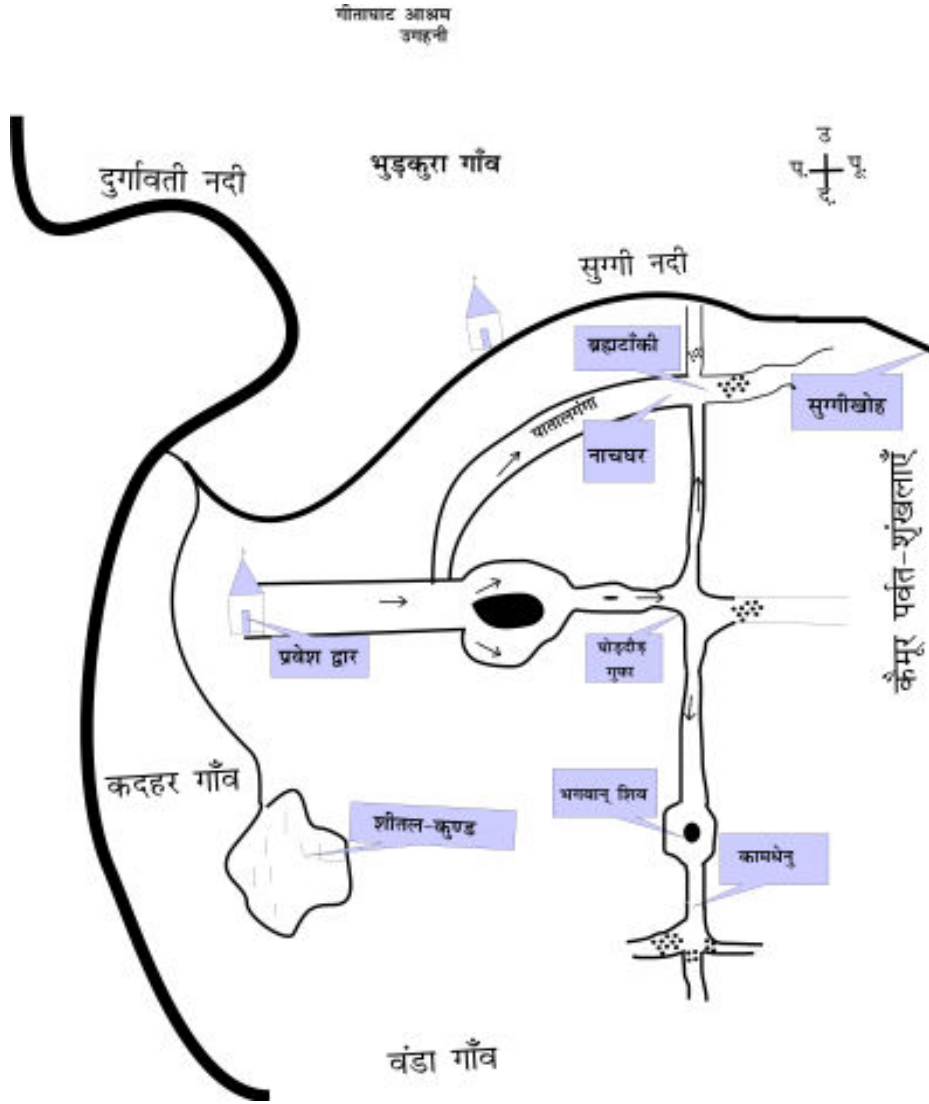
कहा कि हे ब्राह्मण देवता! 'जाति-पाँती पूछे नहीं कोई। हरि के भजे सो हरि अस होई।' हे ब्राह्मण देवता! आप तो एक विद्वान् हैं, आपको ऐसी शंका करना शोभा नहीं देता। हम सब सन्त हैं और समरसता सिद्धान्त के राह पर चलने लायक बनें। मेरा तेरा का दायरा, ये आँसू की बूँदे और मुस्कान की चाँदनी सब कुछ धरती पर ही है। जो जन्म लेता है वही मरता है। ईश्वर आजन्मा है। ईश्वर का क्षरण नहीं होता। उसका न ही आदि है और न अन्त है। वह तो अनन्त है चर, अचर, सबमें व्याप्त है। वह तो सत्य स्वरूप है। सात्त्विक मन से ही ईश्वर का

साक्षात्कार हो सकता है तामसिक बुद्धि से नहीं। ईश्वर तो ज्ञान स्वरूप है जिसका अनुभव हृदय से किया जा सकता है बाहर से नहीं।

श्रीगुफा मन्दिर गुप्तधाम के वर्तमान महंथ श्री गिरिवरानन्दजी महाराज ने मेरे साथ आये सन्त-मण्डलियों का पुरजोर स्वागत किया। साधुशाही विधि से सम्मानित कर अपार हर्ष व्यक्त करते हुए कहा कि प्रभु की सेवा ही मेरे जीवन दर्शन का सार है। मानवता को चाहिए संवेदना, जब आप खुश हो तो सम्मान के साथ सेवा करने के लिए हमेशा तत्पर रहे।



गुफा के प्राचीन द्वार पर भस्मासुर



गुप्तधाम एवं आसपास का मानचित्र (पैमाना नहीं)

# राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप

डा० जय नन्दन पाण्डेय



“अशुद्ध साधन से जब सुवर्ण घर में आता है तब कलियुग भी उसके साथ आ जाता है। अनीति और अन्याय से प्राप्त धन में कलियुग का वास है। असत्य, मद, काम, वैर और रजोगुण-ये पाँच जहाँ न हों, वहाँ आज भी सत्ययुग है।”

“एक दिन राजा परीक्षित् के मन में ऐसी जिज्ञासा हुई कि मेरे दादाजी ने खजाने में मेरे लिये क्या-क्या रखा है। एक पेटी में स्वर्णमुकुट मिला जो जरासंध के खजाने का था और उसे भीम ने जबर्दस्ती लाया था। अतः वह धन अनीति का था। अनीति का धन उसके कमानेवाले को और उसके वारिस को दुःखी करता है। राजा ने उस स्वर्णमुकुट को धारण किया, चूँकि सुवर्ण में कलि का वास था, फलतः राजा परीक्षित् के मन में स्वतः एक भाव उत्पन्न हुआ...”

“उनका क्रोध और क्षोभ इतना बढ़ गया कि वे अपने स्वयं पर नियन्त्रण खो बैठे और अपने सद्व्यवहार का नियम भी भुला बैठे। बाहर निकलते हुए उन्होंने एक मृत सर्प देखा। बस उसी क्षण उनके मन में एक दूषित विचार आया और उन्होंने अपने बाण की नोक से उस सर्प को उठाकर उस तपस्वी के गले में डाल दिया।” इसी कथा से

परीक्षित् शब्द की व्युत्पत्ति होती है (परि+क्षि+क्विप्, तुक्, उपसर्गस्य दीर्घः) जिसका शाब्दिक अर्थ- परखा गया अर्थात् जिसकी परीक्षा पहले ही ली जा चुकी है; ऐसे थे राजा परीक्षित्। ये अर्जुन का पौत्र, अभिमन्यु का पुत्र तथा पाण्डवों का एकमात्र उत्तराधिकारी, जिसे धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने हाथों हस्तिनापुर का विराट् राज्य सौंपा था। जिसकी रक्षा गर्भ में ही स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने की थी और जिसका नामकरण भी (परीक्षित्) स्वयं भगवान् ने किया था। ऐसे आर्यावर्त के महान् सम्राट् परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि के सर्पदंश का शाप लगा है। राजा परीक्षित् जिस समय शासन कर रहे थे उस समय द्वारपर एवं कलियुग का संक्रमण काल था। द्वारपर की विदाई थी और कलियुग का प्रवेश।

एक बार राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वती के पावन तट पर घूम रहे थे तो देखा कि एक गाय

आगे-आगे भाग रही थी, उसके पीछे-पीछे एक बैल भाग रहा है, उसके पीछे एक व्यक्ति हाथ में दण्ड लिए उनदोनों को पीटता जा रहा है, जैसे उसका कोई रक्षक ही नहीं हो। बैल का रंग श्वेत था और वह दण्ड के प्रहार से थर-थर काँप रहा था। साथ में आगे-आगे भागनेवाली वह गाय भी उसके पैरों की ठोकें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। ऐसे दर्दनाक दृश्य को देखकर राजा परीक्षित् ने पूछा-  
कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान् बली।  
नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणा द्विजः॥

(श्रीमद्भागवत, 1/17/05)

अर्थात् अरे! तू कौन है? जो बलवान् होकर भी मेरे राज्य के इन दुर्बल प्राणियों को बलपूर्वक मार रहे हो? तूने नट की भाँति अपना वेष तो राजा जैसे बना रखा है परन्तु कर्म से तू शूद्र मालूम पड़ते हो।

यस्त्वं कृष्णे गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना।  
शोच्योऽस्य शोच्यान् रहसि प्रहरन् वधमर्हसि॥

हमारे दादा अर्जुन के साथ भगवान् श्री कृष्ण के परमधाम पधार जाते पर इस प्रकार निर्जन स्थान में निरपराधों पर प्रहार करनेवाला तू अपराधी है और वध के योग्य है।

इसके बाद परीक्षित ने गाय रूपी पृथ्वी एवं धर्मरूपी बैल को निर्भय करते हुए अपनी विनम्र वाणी से संतुष्ट किया। इसके बाद परीक्षित ने कहा- 'हे धर्मदेव! सत्ययुग में आपके चार चरण थे- तप, पवित्रता, दया और सत्या। इस समय अधर्म के अंश-गर्व, आसक्ति और मद से आपके तीन चरण नष्ट हो चुके हैं और अब चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है, उसी के बल पर आप बच रहे हैं। असत्य से पुष्ट हुआ यह अधर्म रूप कलियुग उसे भी ग्रास बना लेना चाहता है। ये गौ माता भी साक्षात् पृथ्वी हैं, इनकी रक्षा करना भी मेरा धर्म है।'

महारथी परीक्षित ने इस प्रकार धर्म एवं पृथ्वी को सान्त्वना दी और कलियुग को मारने के लिए अपनी तीक्ष्ण तलवार उठायी। परीक्षित के इस उग्र रूप को देखकर कलियुग उनके चरणों पर गिर पड़ा। कलियुग के इस व्यवहार से राजा मुलायम पड़ गए और उन्होंने कहा कि 'तुम अधर्मी को मेरे राज्य में रहने का कोई अधिकार नहीं, जा तू यहाँ से चला जा तेरे आगमन से लोभ, झूठ, चोरी, दुष्टता, दरिद्रता, कपट, कलह तथा दम्भ आदि पापों की वृद्धि हो रही है। इसलिए तुम अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रह सकते।'

राजा परीक्षित की इस बात पर कलियुग ने बड़ी विनम्रता से कहा- 'राजन्! ब्रह्मा ने अपनी सृष्टि में चार युगों का निर्माण किया है जिनमें सत्ययुग, त्रेता एवं द्वापर- ये तीन युग बीत चुके हैं, चौथा युग मैं कलियुग हूँ मुझे भी उन तीन युगों की तरह बीतना है। अतः आप मुझ पर कृपा करते हुए वह स्थान बतलाइए, जहाँ मैं आपकी आज्ञा का पालन करते हुए स्थिर होकर रह सकूँ।

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ।  
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः॥

(श्रीमद्भागवत/अ. 17/प्र.स्क.38)

कलियुग की प्रार्थना पर राजा परीक्षित ने उसे चार स्थान दिये- द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग (वेश्या) और हिंसा। इन चारों स्थानों में क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता- ये चार प्रकार के अधर्म निवास करते हैं। इस पर कलियुग ने कहा- 'राजन्! इन चार स्थानों में कोई भी भला व्यक्ति नहीं जा सकेगा, इसलिए कोई एक अच्छा स्थान दीजिए।' राजा ने 'सुवर्ण' में निवास करने के लिए उसे एक और स्थान दे दिया।

ध्यातव्य है कि अशुद्ध साधन से जब सुवर्ण घर में आता है तब कलियुग भी उसके साथ आ जाता है। अनीति और अन्याय से प्राप्त धन में कलियुग का वास है। असत्य, मद, काम, वैर और रजोगुण- ये पाँच जहाँ न हों, वहाँ आज भी सत्ययुग है।

कलियुग ने मन में विचार किया कि मैं सबसे पहला वार राजा परीक्षित पर ही करूँगा। एक दिन राजा परीक्षित के मन में ऐसी जिज्ञासा हुई कि मेरे दादाजी ने खजाने में मेरे लिये क्या-क्या रखा है। एक पेटी में स्वर्णमुकुट मिला जो जरासंध के खजाने का था और उसे भीम ने जबर्दस्ती लाया था। अतः वह धन अनीति का था। अनीति का धन उसके कमानेवाले को और उसके वारिस को दुःखी करता है। राजा ने उस स्वर्णमुकुट को धारण किया, चूँकि सुवर्ण में कलि का वास था, फलतः राजा परीक्षित के मन में स्वतः एक भाव उत्पन्न हुआ, जिसपर भागवत में लिखा है-

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन् मृगयां वने।

मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम्॥

(श्रीमद्भागवत :1.18.24)

यद्यपि राजा परीक्षित का स्वभाव बराबर शिकार खेलने का नहीं था, परन्तु उस स्वर्णमुकुट के कारण, जिसमें कलि का वास था, एक दिन राजा परीक्षित धनुष-बाण लेकर वन में शिकार के

लिए गए और एक मृग का पीछा करते-करते मार्ग भटक गए।

इधर-उधर भटकते हुए राजा थक गए फलतः राजा को बड़े जोर की भूख और प्यास लगी। तृष्णा के कारण कण्ठ सूख गया था। जल की व्याकुलता के कारण राजा प्यास-प्यास कहकर चिल्लाने लगे। सामने एक कुटिया दिखलाई पड़ी। राजा को धैर्य हुआ कि इसमें जरूर जल होगा। इसी उम्मीद से उन्होंने आवाज लगाई, परन्तु कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। जब वे कुटिया के भीतर गए और ध्यान से देखा तो पाया कि एक तपस्वी ध्यान में निमग्न हैं। वे उनके पास गए और करुणापूर्ण स्वर में जल के लिए उनसे निवेदन किया परन्तु वे साधना में इस प्रकार निमग्न थे कि उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

महाराज परीक्षित् को बहुत बड़ा क्षोभ एवं क्रोध हुआ कि एक सम्राट् को कुटिया पर आकर पुकारने पर भी यह तपस्वी समाधि में इस प्रकार लीन है कि भूख-प्यास से सन्तप्त प्राणी की करुणापूर्ण याचना पर भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। परीक्षित् के स्वाभिमान को बहुत ठेस लगी। उनका क्रोध और क्षोभ इतना बढ़ गया कि वे अपने स्वयं पर नियन्त्रण खो बैठे और अपने सद्व्यवहार का नियम भी भुला बैठे। बाहर निकलते हुए उन्होंने एक मृत सर्प देखा। बस उसी क्षण उनके मन में एक दूषित विचार आया और उन्होंने अपने बाण की नोक से उस सर्प को उठाकर उस तपस्वी के गले में डाल दिया। तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर राजा किसी अन्य स्थान की खोज में चल दिए जहाँ पीने को जल और खाने को भोजन मिल सके।

जिस ऋषि के गले में सर्प डाला गया था वे शमीक ऋषि थे। शमीक ऋषि के पुत्र शृंगी को जब इस घटना की जानकारी मिली तो वह क्रोध से भड़क उठा कि ऋषि का अपमान करनेवाला यह राजा अपने आप को क्या समझता है। उसने सोचा कि ब्रह्मतेज अब भी जगत् में विद्यमान है। मैं राजा

को शाप दूँगा। श्रीमद्भागवत में शृंगी ऋषि के इस भाव को इस प्रकार लिखा है-

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम्।  
तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ॥३५॥  
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकः।  
कौसिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह॥३६॥  
इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि।  
ददक्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्बुहम् ॥३७॥

श्रीमद्भागवत/1.18.35-37॥

क्रोध से लाल-लाल आँखों वाले उस ऋषि कुमार ने कौशिकी नदी के जल से आचमन करके अपने वाणी रूपी वज्र का प्रयोग किया। उस कुलङ्गार परीक्षित् ने मेरे पिता का अपमान करके मर्यादा का उल्लंघन किया है, इसलिए मेरी प्रेरणा से आज के सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डस लेगा।' शाप देने के बाद ऋषि पुत्र क्रोधाग्नि में जलता हुआ रोने लगा और अपने आप को कोसने लगा। हाय! मेरे जीवित होते हुए भी मेरे पिता को ऐसा अपमानित किया गया। अच्छा होता कि मैं मर गया होता। उस पुत्र को धिक्कार, जिसके रहते हुए पिता को अपमानित होना पड़े। शृंगी की ऐसी पीड़ा देखकर उसके मित्रों ने उसे शान्त करने का प्रयास किया और उसे बहुत प्रकार से समझाया।

उसी समय शमीक ऋषि की साधना भंग हुई और उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। उन्होंने महसूस किया कि उनके गले में कुछ है, और फिर देखा कि उनके गले में एक मरा हुआ साँप है। उसे फेंक कर उन्होंने अपने पुत्र से पूछा- 'बेटे! तुम क्यों रो रहे हो? किसने तुम्हारा अपकार किया है?'

उनके द्वारा ऐसा पूछे जाने पर बालक ने सब कुछ बता दिया। ब्रह्मर्षि शमीक को राजा को दिये गए शाप की बात सुनकर बड़ा आघात पहुँचा और उन्हें अपने पुत्र के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहा-

निशाम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं  
स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत्।

अहो बताहो महदज्ञ ते कृत-  
मल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः॥

श्रीमद्भागवत/1.18.41

‘मूर्ख बालक! तूने बड़ा पाप किया है। खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलती के लिए तू ने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया है। क्या एक ऋषि पुत्र को इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए? एक मामूली सा अपराध पर इतना भयंकर विनाशकारी शाप। तू ने ऐसी भूल की है, जिसका कोई सुधार, कोई पश्चात्ताप नहीं है। मुझे तो अब यह कहने में भी लज्जा और संकोच होगा कि तुम मेरे पुत्र हो। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे इस कृत्य के कारण सम्पूर्ण ऋषि-मुनियों की कितनी बड़ी बदनामी होगी। लोग कहेंगे कि उनमें सामान्य सहनशीलता और धैर्य तक नहीं रहा है। मुझे तुम अब अपना मुँह मत दिखाओ, इसे देखने में भी अब दोष है। दोषी और अपराधी व्यक्तियों को दण्ड देना राजाओं का काम है, न कि वन में निवास करनेवाले एकान्तवासी सन्यासियों का। जो सन्यासी शाप देता है, वह सन्यासी हो ही नहीं सकता।’

**धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राट् बृहच्छवाः।  
साक्षान्महाभागवतो राजर्षिः हयमेधयाट्  
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मत् शापमर्हति॥**

श्रीमद्भागवत/1.18.46

‘सम्राट् परीक्षित तो बड़े ही यशस्वी और धर्म धुरन्धर हैं। उन्होंने तो बहुत अश्वमेघ यज्ञ किये हैं, वे भगवान् के परम भक्त हैं, वे भूख और प्यास की व्याकुलता में मेरे आश्रम पर आये थे। वे शाप के योग्य कदापि नहीं हैं।’

महामुनि शमीक को अपने पुत्र के अपराध पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित ने उनका अपमान किया था, इसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

पिता की ऐसी वाणी को सुनकर शृंगी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और अपने पिता के पैरों पर गिर

पड़ा और रोने लगा। पूज्य पिताजी! मुझे क्षमा करें। मैं यह देखकर क्रोध में अन्धा हो गया था कि एक राजा ने इस प्रकार का अभद्र, अपमानजनक और अमानवीय व्यवहार कैसे किया? आपका जो अपमान किया गया उसे मैं सहन नहीं कर सका। यह कहाँ तक न्याय-संगत था कि एक राजा इतना अनुचित व्यवहार करे, वह भी एक ऋषि के आश्रम में आकर।

शमीक ऋषि ने अपने पुत्र की ऐसी सोच देखकर उसे अपने निकट बुलाया और कहा- ‘पुत्र! समय बड़ा बलवान् होता है, वह जो चाहता है सो करा जाता है। जब समय विपरीत आ जाता है तब मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है, जैसा कि कहा गया है- विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। राजा परीक्षित कोई सामान्य राजा नहीं अपितु धर्मात्मा राजा हैं। कलियुग ने अपने प्रभाव में लाकर उनसे ऐसा कृत्य करवाया है। राजा तो बेकसूर हैं। वे एक महान् सम्राट् हैं, और उनकी ख्याति त्रिलोक में व्याप्त है। माना कि उनसे थोड़ी भूल हो गई है परन्तु उस थोड़ी-सी भूल के लिए इतनी बड़ी सजा, यह सर्वथा अनुचित है। आज तुम्हारे उस शाप के कारण समस्त ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों की इतनी बड़ी क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं।’

महर्षि शमीक की चिन्तनशीलता देखकर उनके आश्रम के समस्त ऋषियों ने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि आपकी आध्यात्मिक स्थिति आपके पुत्र की अपेक्षा बहुत उच्च है और आप अपने आध्यात्मिक बल से जो चाहें आप प्राप्त कर सकते हैं, फिर आप अपने पुत्र द्वारा दिये गए शाप के कारण इतने अधिक चिन्तित क्यों हैं? क्या, आप इस शाप का शमन नहीं कर सकते? कृपा कर हम सब की प्रार्थना स्वीकार कर इस बालक को क्षमा करें, और राजा को भी शाप के दुष्परिणाम से बचा लें तथा उनका कल्याण करें।

शमीक ऋषि को ऋषियों की बात अच्छी लगी। उन्होंने तत्क्षण अपनी आँखें बन्द कर लीं और

ध्यानस्थ हो गए। उन्होंने अन्तर्मुख होकर यौगिक दृष्टि से महाराज परीक्षित का भूत और भविष्य देखा। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राजा को तक्षक द्वारा डँसा जाना अवश्यम्भावी है, और भाग्य की इस विडम्बना को टाला नहीं जा सकता है। उन्होंने तो यह भी अनुभव किया कि महाराज परीक्षित की मृत्यु सर्प-दंश से होना उनकी भाग्य रेखा में ही अंकित है, और तदनुसार शृंगी द्वारा प्रदत्त शाप उसी की प्रेरणामात्र है। वे इस निर्णय पर पहुँच गये कि समस्त संकल्पों, विकल्पों और कर्मों का शिल्पी वह परम पिता परमेश्वर ही इस घटना-क्रम में कोई परिवर्तन कर सकता है, अन्यथा इसमें किसी प्रकार का संशोधन सम्भव नहीं है।

महर्षि के आश्रम से जब राजा परीक्षित अपनी राजधानी हस्तिनापुर पहुँचकर सिर से स्वर्ण-मुकुट उतारते हैं, तब अतीत का सारा दृश्य उनके सामने उपस्थित हो जाता है। राजा को अपने उस निन्दनीय कर्म के लिए बड़ा पश्चात्ताप होता है। वे अत्यन्त उदास हो जाते हैं और सोचने लगते हैं, अवश्य ही, उन महात्मा के अपमान के फलस्वरूप शीघ्र से शीघ्र कोई घोर विपत्ति मेरे ऊपर आयेगी। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है? मैं क्या करूँ?’ महाराज परीक्षित के मन में अन्तर्द्वन्द्व होने लगे।

ठीक उसी समय एक अंगरक्षक द्वार पर आकर नतमस्तक होकर खड़ा हो गया। राजा के प्रश्न करने पर उसने बताया कि शमीक ऋषि के आश्रम से एक विद्यार्थी आया है, जो आपसे एकान्त में मिलना चाहता है। विद्यार्थी का कहना है कि उसने एक महत्वपूर्ण सूचना लायी है और महाराज से मिलने के लिए बड़ा आतुर है।

महाराज अपने अंगरक्षक की इस सूचना को पाकर अवाक् रह गए। उन्होंने तत्क्षण अपने अंगरक्षक से पूछा- ‘कैसा है वह ब्रह्मचारी, उदास है या प्रसन्न, क्रोधावेश में है या शान्त, क्या कहता है, आदि-आदि।

अंगरक्षक ने उत्तर दिया- ‘महाराज से मिलने को आया हुआ वह ऋषिपुत्र बहुत ही संयत, शान्त

और सौम्य है। वह तो जब से द्वार पर आया है तब से ‘महाराज की जय हो’, ‘सम्राट् की जय हो’ का जयघोष अपने मुख से निकाल रहा है। उसमें कोई क्रोध अथवा उद्वेग नहीं दिख रहा है। वह आपसे शीघ्र मिलने को उत्सुक है, उसकी उत्सुकता को देखकर लगता है कि शमीक ऋषि के आश्रम की कोई आवश्यक सूचना उसने लायी है। साथ ही सूचना देकर वह शीघ्र आश्रम लौट जाना चाहता है।’

अंगरक्षक की ऐसी सूचना पाकर महाराज द्वार की ओर दौड़ पड़े। उन्हें उस समय न अपने तन की सोच रही और न अपने वस्त्र की। पैरों में न तो पादुका पहनी, और न तो तन पर अंग-वस्त्र को धारण किया। उस राजा ने उस ऋषिपुत्र के चरणों पर झुककर साष्टांग प्रणाम किया और उनके दोनों हाथों को पकड़े अपने महल के निजी कक्ष में सविनय लाकर एक उच्च स्थान पर बैठा दिया, और स्वयं नीचे जमीन पर बैठ गए। उसके बाद महाराज परीक्षित ने उनसे आने का कारण पूछा।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ने राजा से कहा- ‘राजन्! महर्षि शमीक ने सबसे पहले आपको अपना विशेष आशीर्वाद भेजा है, साथ ही एक अत्यावश्यक सूचना भी दी है।’ इतना कहते-कहते ब्रह्मचारी रो पड़े। ऋषिपुत्र की ऐसी दशा देखकर राजा ने पूछा- ‘कहिए, शीघ्र कहिए, आपके रोने का कारण क्या है? क्या महर्षि पर कोई विशेष विपत्ति आ गई है अथवा उनके आश्रम पर? मैं उनकी सहायता एवं रक्षा के लिए अपने प्राण का भी बलिदान कर सकता हूँ।’

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया- ‘राजन्! न तो शमीक ऋषि पर कोई विपत्ति आई है और न हीं उनको आश्रम पर कोई संकट आया है। विपत्ति तो केवल आप पर आई है, जिसके लिए मैं विशेष संदेश लेकर आया हूँ। महाराज ने कहा- ‘आप शीघ्र बताईए कि उन्होंने मेरे लिए कौन-सा संदेश भेजा है?’

उस पर ब्रह्मचारी ने विनम्रतापूर्वक कहा- महाराज, आपसे एक छोटी-सी भूल हो गई है, जिस

कारण उनका पुत्र शृंगी ने उससे भी बड़ी भूल कर दी है। उनका पुत्र देखने में तो अल्प-वय है, परन्तु ऋषि की कृपा से उसकी आध्यात्मिक शक्ति ने बड़ी ऊँचाई को प्राप्त कर ली है। वह अपने पिता को देवतुल्य मानता है और अहर्निश अपने पिता की सेवा में लगा रहता है। आप किसी प्रेरणावश उनकी कुटिया पर गए थे और उनके गले में मृत सर्प डाल दिया था। शृंगी को जब इसकी सूचना मिली तो उसने आपको शाप दे दिया है।’

यह सुनकर महाराज परीक्षित् ने कहा- ‘हे ब्रह्मचारी! आप बताएँ मुझे क्या शाप दिया गया है?’ ब्रह्मचारी ने कहा- ‘हे राजन्! मुझसे कहते नहीं बन रहा है। मेरी जिह्वा उसके उच्चारण के लिए अपने आप को समर्थ नहीं पा रही है, फिर भी गुरुदेव का आदेश है, इसलिए मुझे कहना ही पड़ेगा। हे राजन्! शृंगी ने कौशिकी नदी का जल अपने हाथ में लेकर आपको शाप दिया है कि ‘आज के सातवें दिन राजा को तक्षक नाग (साँप) डस ले और उसकी मृत्यु हो जाये’।

ऐसा सुनकर राजा परीक्षित् चिन्तित नहीं हुए और उन्होंने कहा- ‘हे ब्रह्मचारी! क्या यही शाप है?’ सात दिनों के बाद, तक्षक द्वारा डँसे जाने से मृत्यु कोई शाप नहीं है, बल्कि मेरे लिए वरदान है। यह तो ऋषि का मेरे लिए आशीर्वाद है।’

महर्षि वेदव्यासजी ने श्रीमद्भागवत में परीक्षित् के मनोभाव को इस प्रकार लिखा है-

**स चिन्तयन्निथमथाशृणोद् यथा  
मुनेः सुतोक्तो निऋतिस्तक्षकाख्यः।  
स साधु मेने न चिरेण तक्षका-  
नलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम्॥**

(श्रीमद्भागवत। 1.19.4)

अर्थात् ऋषि कुमार का यह शाप कि तक्षक मुझे डँसेगा, बुरा नहीं लगा। बल्कि धधकती हुई आग के समान तक्षक का डँसना भी उन्हें भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनों से मैं संसार में आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य उत्पन्न होने का कारण प्राप्त हो गया है।

महाराज परीक्षित् ने आश्रम से समागत उस-ब्रह्मचारी को साष्टांग प्रणाम किया और कहा- ‘आपने पूज्य गुरुदेव शमीक ऋषि और उनके तेजस्वी पुत्र शृंगी को मेरा सादर एवं सविनय प्रणाम निवेदित करना और कहना कि मैं उनका बहुत आभारी हूँ।’ तत्पश्चात् ब्रह्मचारी शमीक ऋषि के आश्रम को लौट गया।

इसके बाद राजा परीक्षित् अपने राज-काज का भार अपने पुत्र जनमेजय को सौंप कर गंगा के पावन तट पर अनशन व्रत के लिए प्रस्थान कर गए।

इन्दुनिकेतन, राजगीर, नालंदा  
(बिहार)



### नारद-भक्ति-सूत्र में भक्ति की व्याख्या

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः । सू. सं. १।

ग्रन्थ का आरम्भ और भक्ति की व्याख्या को इसका विशय वस्तु बताया गया है ।

स त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा । सू. सं. २।

इस भक्ति का स्वरूप परम प्रेममय है ।

अमृतस्वरूपा च । सू. सं. ३।

साथ ही भक्ति अमृतमय है ।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति । सू. सं. ४।

जिस व्यक्ति को यह प्राप्त हो जाता है, वह सिद्ध हो जाता है, अमृत बन जाता है और तृप्त हो जाता है।



## हिन्दी धार्मिक फिल्मों का स्वर्णिम अतीत

ओम प्रकाश सिन्हा

अक्सर कहा जाता है कि भविष्य में दृश्य-मीडिया यानी चलचित्र, वृत्तचित्र, टी.वी. धारावाहिक, यू-ट्यूब वीडियो आदि समस्त लिखित साहित्य- महाकाव्य, काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता, आलेख, शोध-प्रबन्ध आदि को निगल जायेगी।” यह भविष्यवाणी सच्चाई से परे नहीं है। आज लोग टी.वी. धारावाहिक देखकर निर्देशक की कल्पना को भी प्रामाणिक मानने लगे हैं। यह ‘काव्येषु नाटकं रम्यम्’ के प्राचीन उद्घोष की विजय-गाथा है। यह भी कहा जाता है कि आज के समाज में फैलती कई बुराइयों की जड़ें सिनेमा जगत् से जुड़ी हैं, ऐसे समय में एकबार फिर ईमानदारी से, प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर बनाये गयी धार्मिक फिल्मों की आवश्यकता प्रासंगिक हो गयी है। हिन्दी में धार्मिक फिल्मों के इतिहास पर प्रकाश डाल रहे हैं- पत्रकार श्री ओम प्रकाश सिन्हा। -सं.

भारत में सिनेमा-जैसे वैज्ञानिक मीडिया का प्रथम इस्तेमाल धार्मिक कथा को दुहराने के लिए किया गया। यानी हिन्दुस्तान में सिनेमा की शुरुआत ‘लाइफ आफ क्राइस्ट’ 1896 नामक धार्मिक फिल्म से हुई थी। दादा साहेब फाल्के ने जो पहली हिन्दी फिल्म बनायी वह ‘राजा हरिश्चन्द्र’ थी। यानी, शुरुआत ही हमारे यहाँ ‘नल दमयन्ती’ ‘भीष्म प्रतिज्ञा’ और ‘अयोध्या का राजा’ जैसे धार्मिक फिल्मों से हुई। वह जमाना ही धार्मिक फिल्मों का था। उस दौर में बनी धार्मिक फिल्मों लोगों को हिंसा, बुराइयों तथा अपराधों से दूर रहने की प्रेरणा देती थीं।

यूँ तो उस समय देवी-देवताओं के जन्म को लेकर अनेक चामत्कारिक फिल्में बनीं, जैसे ‘हनुमान-जन्म’ ‘रामायण’ ‘बाबा नामदेव’ ‘वामन अवतार’ ‘महाभारत’ ‘नागदेवता’ आदि। यानी, बोलती फिल्मों के आरंभ के बाद लगभग दो दशक तक धार्मिक फिल्मों का जबर्दस्त दौर चला। किन्तु जहाँ

तक धार्मिक फिल्मों के उद्देश्यपरक होने का प्रश्न है ‘रामराज्य’ के समानान्तर कोई दूसरी धार्मिक फिल्म नहीं बनी। दरअसल प्रकाश चित्र कृत ‘रामराज्य’ अब तक हिन्दी में बनी सर्वश्रेष्ठ पौराणिक फिल्म कही जा सकती है। विजय भट्ट ने इस फिल्म में रामायण की कहानी को दो भागों में बाँटी थी। इस फिल्म को महात्मा गाँधी तक ने देखा और सराहा था। कहते हैं इस फिल्म को देखने के बाद ही उन्होंने ‘रामराज्य’ की कल्पना को साकार करने के लिए ठोस प्रयत्न करने शुरू कर दिए थे। ‘रामराज्य’ विशेष राजनीतिक व सामाजिक पृष्ठभूमि में बनी थी। गुलामी से मानसिक छुटकारा पाने के लिए हर हिन्दुस्तानी उन दिनों धर्म और भक्ति की शरण लेता था, और नेता अवतारों का उपयोग उद्बोधन के तौर पर किया करते थे। इस फिल्म में शोभना समर्थ, प्रेम अदीब, उमाकान्त, बदरी प्रसाद और अमीर बाई कर्नाटकी ने प्रमुख भूमिकाएँ अदा की थीं। फिल्म के गीत लिखे थे, रमेश गुप्त ने, और संगीत दिया था, शंकर राव व्यास ने।

वैसे तो भारतीय फिल्मों के इतिहास में धार्मिक फिल्मों का काफी समय तक महत्वपूर्ण हिस्सा रही। शुरू के सालों में धार्मिक फिल्में बनी, क्योंकि तब फिल्म-तकनीक अधिक विकसित नहीं थी। कथा-पटकथा का भी बेहतर सिलसिला शुरू नहीं हो पाया था।

सबसे बड़ी बात तो यह थी कि तब फिल्मों में बोल नहीं पाती थीं, इसलिए फिल्मों के लिए ऐसे ही विषय लिए जाते थे जो दर्शकों को आसानी से भा सकें और वे कहानी भी समझ सकें। ज़ाहिर है ऐसे विषय धार्मिक ही हो सकते थे। फिल्म 'लाइफ ऑफ क्राइस्ट' पहली बार 17 जुलाई 1896 को बम्बई के वाटसन होटल में दिखायी गयी थी। फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' पहली बार 12 दिसम्बर, 1912 को बम्बई के 'कोरोशन थियेटर' में रिलीज हुई। इसी तरह 'नल-दमयन्ती' पहली बार 1917 में दिखायी गयी।

दादा साहेब फाल्के ने 1912 से 1937 तक 125 धार्मिक फिल्मों बनाईं। इनमें 'गंगावतण' ही बोलती फिल्म थी। फाल्के की सफलता ने बम्बई में 17, बंगाल में 8, मद्रास में 8, पंजाब में 4 फिल्मी कम्पनियाँ खुलवा दीं। इन कम्पनियों ने 1600 से ज्यादा फिल्मों बनाईं। जिसमें ज्यादातर धार्मिक फिल्मों थीं। 1931 में 23 बोलती फिल्मों बनीं। जिनमें आठ धार्मिक फिल्मों थीं। 1932 में 60 फिल्मों में से 30 तथा 1934 में 157 फिल्मों में से 25 फिल्मों धार्मिक थीं। उस समय 85 फिल्म कम्पनियाँ मैदान में थीं, जिनमें दो-चार को छोड़ सभी धार्मिक फिल्मों का निर्माण करती थीं। चूँकि इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि 'ब्रिटिश सेंसर बोर्ड' धार्मिक फिल्मों को पास करने में कोई अरचन नहीं डालता था। 1936 में प्रभात की 'अमरज्योति' वेनिस में 1937 में इसी सम्मेलन में 'संत तुकाराम' को विश्व की तीन सर्वश्रेष्ठ फिल्मों में से एक माना गया। 1936 से 1942 तक का

## M. GANDHIJI SEES PRAKASH'S "RAM RAJYA"

Historical Event Of Indian Film  
Industry

BOMBAY, Saturday.

On Friday night at 9 p.m. a historical event of the Indian Film Industry took place at 'Palmbun,' Juhu when Mahatma Gandhi and others saw a few selected reels of Prakash Pictures 'RAM RAJYA'. This was the first Indian Talkie ever seen by Mahatmaji.

Mahatmaji saw the selected pieces of 'RAM RAJYA' for forty minutes. among others present were Mr. Shanti Kumar Swami Anand, Mr. Gaganvihari Mehta and others. At the end of the show Mahatmaji seemed quite cheerful, and with his usual smile he left for his 'Shack'. Mr. Vijay Bhatt, the director of 'RAM RAJYA', was explaining the details of scenes while show was in progress.

Mr. Kanu Desai, the renown art director, Mr. Samaldas Gandhi, and Mr. Bhadra Kumar Yagnik of 'Prakash' are responsible for arranging this special show for Mahatma.

समय धार्मिक फिल्मों का 'स्वर्णयुग' रहा। इस दौरान बनी धार्मिक फिल्मों कला और अभिनय की दृष्टि से उत्कृष्ट रहा।

हालाँकि, दादा साहेब फाल्के 1914 में 'सावित्री', 'भस्मासुर', 'मोहिनी', व 'राजा-हरिश्चन्द्र' जैसी फिल्मों को लेकर लन्दन गए। तब फिल्म संस्था 'वार्नर ब्रदर्स' ने इन तीनों फिल्मों के 150 प्रिन्टों का आदेश दिया। लेकिन कच्चा माल न मिल पाने के कारण ये प्रिन्ट नहीं बनाए जा सके। फाल्के साहेब ने 1917 तक 23 फिल्मों बनाईं जो सभी धार्मिक थीं। इनमें 'लंकादहन' ने तो इतनी लोकप्रियता हासिल की कि 'चेन्नई' में फिल्म की टिकटों की



‘राजा हरिश्चन्द्र’ का एक दृश्य

बिक्री बैलगाड़ी पर लादकर की जाती थी। उन दिनों फिल्मों के शो सुबह सात बजे से रात के बारह बजे तक होते थे।

उस ज़माने में तमाम बड़े निर्माता धार्मिक फिल्म बनाने में दिलचस्पी लेते थे। विजय भट्ट, केदार शर्मा, शांताराम, सोहराब मोदी के अलावा रणजीत मूवी ‘मदन थियेटर’ ‘बाम्बे टाकीज’ आदि फिल्म कंपनियों ने सफल और चर्चित धार्मिक फिल्मों का निर्माण किया। उस समय राजकपूर ने ‘महर्षि वाल्मीकि’ में नारद की भूमिका अदा की थी। इसके अलावे चन्द्रमोहन के. एल. सहगल, भारत भूषण दारा सिंह-जैसे लोग धार्मिक फिल्मों में आए। फिर मीना कुमारी ने भी कई धार्मिक फिल्मों में भूमिका अदा की जिनमें ‘वीर घटोत्कच’ जैसी फिल्में थीं। इसी तरह बाम्बे टाकीज की सफल धार्मिक फिल्म की सुपर हिट नायिका लीला चिटनिस को लिया गया। शांता आपटे ने भी दस वर्ष की उम्र में धार्मिक फिल्म ‘श्यामसुन्दर’ से तथा नंदा

ने ‘सावित्री’ से अपना कैरियर शुरू किया।

यूँ तो वर्तमान स्थिति यह है कि सम्प्रति निर्माता धार्मिक फिल्म बनाने से हिचकते हैं। बी. आर. चोपड़ा रामानंद सागर ने थोड़ा प्रयास किया जिसके चलते छोटे परदे पर धारावाहिक ‘महाभारत’ ‘रामायण’ और ‘श्रीकृष्ण’ जैसी सीरियल देखने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रकाश मेहरा, शक्ति सामंत, मनमोहन देसाई, जी. पी. सिप्पी-जैसी निर्माता-शक्तियों के पास साधनों की कभी नहीं थी, लेकिन वे धार्मिक फिल्मों पर काम करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझते रहे।

कहते हैं, उस ज़माने में कलाकार धार्मिक फिल्मों में काम करने के लिए लालायित रहते थे; किन्तु, अब हालात बिल्कुल बदल गए हैं। आज किसी अभिनेता या अभिनेत्री से धार्मिक फिल्म में काम करने को कहा, जाए तो शायद तैयार नहीं होंगे। अब तो बननेवाली धार्मिक फिल्में उँगलियों पर गिनी जा सकती हैं। यह तो दर्शकों की आस्था और उदात्त भावना की पराकाष्ठा है कि अरुण गोविल राम की भूमिका में और दीपिका जानकी की भूमिका में निर्माता-निर्देशक रामानंद सागर के धारावाहिक के ‘रामायण’ में अभिनय करके जितनी



लोकप्रियता हासिल की, शायद उतनी शोहरत किसी को न मिली होगी। जिस तरह विजय भट्ट के 'रामराज्य' में राम और सीता की भूमिका प्रेम अदीब और शोभना समर्थ ने अदा की थी, उन दोनों के चित्रों (तस्वीरों) की लोग पूजा तक करने लगे थे, उसी तरह छोटे परदे पर रामायण को देखकर लोग अरुण गोविल और दीपिका के चित्रों को पूरे देश में श्रद्धा की दृष्टि से पूजा करते नज़र आते थे। कुछ लोग तो अरुण गोविल और दीपिका को राम और सीता मानने भी लगे थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि धारावाहिक रामायण शुरू होने से, पहले जिस घर में टी. वी. रहता था, उस घर को साफ-सुथरा करके धूप अगरबती जलाकर मन्दिरवत् पवित्रता का ख्याल रखा जाता था। यह सब धार्मिक फिल्मों की लोकप्रियता की ही देन है। 1938 में जयंत देसाई ने 'सन्त तुलसीदास' बनायी, जो 'जय संतोषी माँ' की ही तरह लोकप्रिय हुई।

बहरहाल, धार्मिक फिल्में चौथे दर्जे की फिल्म मानी जाती रही हैं। उस ज़माने में धार्मिक फिल्मों के अलावे अन्य फिल्मों में नायक एवं नायिकाएँ साधारण वस्त्र पहनती थीं। वह ज़माना

अब नहीं रहा। आज की फिल्मों से यदि उस ज़माने की फिल्मों की तुलना की जाय तो फैशन के इस ज़माने में झकास, भेष-भूषा, अश्लीलता, खुलापन, एवं फिल्मों के संवादों में काफी अन्तर आ चुका है। इसमें कोई दो राय नहीं कि उन दिनों धार्मिक फिल्मों ने जो अपनी पहचान बनाई थी या फिर यौवन के दहलीज पर जो पाँव जमाया था वह आज उखड़ गया।

आज धार्मिक फीचर फिल्मों का स्थान धार्मिक धारावाहिकों ने ले लिया है। संजय खान का 'जय हनुमान', धीरज कुमार का 'ॐ नमः शिवाय', पुनीत इस्सर का 'जय माता दी', रामानंद सागर का 'जय गंगा मैया' आदि दूरदर्शन-धारावाहिकों के माध्यम से भगवान् सीधे लाखों लोगों के ड्राईगरूम तक अवतरित हो रहे हैं। सम्प्रति 'हर-हर महादेव' 'महाकुम्भ' और 'जय जय बजरंगबली', धारावाहिक में भी भगवान् के दर्शन हो रहे हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि व्यावसायिकता के इस युग में धार्मिक फिल्मों को वितरक खरीदना नहीं चाहेंगे। इसकी जगह सेक्स और नंगापन से लवरेज हॉरर फिल्में धड़ल्ले से बिक रही हैं।



'गंगावतरण' (1937) का एक दृश्य



# भारतीय वाङ्मय में माँ का स्वरूप

युगल किशोर प्रसाद

“मानव-सन्तति देव-ऋण, गुरु-ऋण, पितृ-ऋण से भले ही मुक्त हो जाय, माँ से वह कभी उऋण नहीं हो पाता। मातृ-प्रदत्त कायासन्तति पर माँ का दिया ऋण है, जिसे मरकर भी चुकाया नहीं जा सकता। इसलिए शास्त्र की आज्ञा है- मातृदेवो भव।

सन्तति की सर्व-हितकारिणी माँ सब देवी-देवताओं से बढ़कर है। हालाँकि, कोई माँ पुत्र को अपना ऋणी नहीं मानती, और यही उसकी महत्ता का रहस्य है। इसीलिए विश्व के हर वाङ्मय में मातृ-महिमा का गायन है। माँ का निरादर सर्वत्र वर्जित है। सन्तति का अस्तित्व माँ की देन है, इसे कौन नहीं जानता?”- इसी लेख से

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान पिता से ऊँचा माना गया है। माँ अपने उदर में नौ मास तक गर्भस्थ शिशु को अपना रक्त पिलाकर पालती है, तथा शिशु के जन्म के अनन्तर अपनी छाती का अमृतोपम दुग्ध पिलाकर पालती है। जबतक शिशु सुप्रौढ़ नहीं हो जाता, वह अपनी सन्तान के जीवन-विकास हेतु सारी जिम्मेदारियाँ निभाती है। शायद, इसी कारण प्रागैतिहासिक काल में समाज के मातृ-प्रधान होने का प्रमाण मिलता है। उस समाज में माँ का अनुशासन ही पूरे समाज पर चलता हुआ बतलाया गया है।

जिस माँ के लिए संस्कृत में ‘जननी’ शब्द का प्रयोग होता है उस महिमामयी माँ के कई रूप उपलब्ध हैं। अपने हर रूप में माँ महिमामयी ही होती है। माँ के कई रूपों में सर्वप्रथम जन्म देनेवाली माँ, अर्थात् सन्तान को अपने गर्भ में नौ मास तक धारण करनेवाली

महीयसी स्त्री और सन्तान सुख की प्राप्ति के लिए प्रसव की दुःसह्य पीड़ा झेलने को तैयार रहनेवाली कष्ट-सहिष्णु स्त्री ही है।

वह भी माँ ही कहलाती है, जो प्राणिमात्र को अपने वक्ष पर धारण करती है। मेरा आशय धरती माँ से है। धरती जीवन मात्र-जड़-जंगम समस्त प्राणियों की माँ है। भगवान् तथा देवी-देवता भी धरती पर अवतार लेकर अपने को धन्य मानते हैं।

जहाँ हमारा जन्म हुआ उसे हम ‘मातृभूमि’ कहते हैं। जैसे भारत हम भारतीयों की जन्मभूमि है। जन्मभूमि को ‘मातृभूमि’ कहा जाना माँ की महत्ता का ही परिचायक है। अपनी मातृभूमि, जन्मभूमि के रक्षार्थ जड़ एवं जंगम प्राणी भी मर-मिटने को तैयार रहते हैं। मनुष्य जाति अपना सर्वस्व मातृभूमि पर न्योछावर करने को तत्पर देखी गयी है। वानस्पतिक पुष्प की अभिलाषा भी कविवर माखनलाला चतुर्वेदी की दृष्टि में मातृभूमि पर शीश चढ़ाने को प्रस्थित बलिदानियों के मार्ग में बिछ जाने की ही है:-

मुझे तोड़ लेना वनमाली,  
उस पथ पर देना तुम फेंक।  
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने  
जिस पथ जावें वीर अनेक॥

माखनलाल चतुर्वेदी की उक्त पंक्तियाँ महीयसी माताओं की श्रेष्ठता के विषय में संस्कृत वाङ्मय की प्रसिद्ध उक्ति की ओर इंगित करती हैं- 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर, यानी श्रेष्ठ है।

अथर्ववेद की उक्ति- 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' में मातृ-महिमा ही उद्घोषित है। धरती हमारी माता है, हम धरती की सन्तान हैं। धरती माँ अपने विशाल वक्ष पर जड़, जंगम समस्त प्राणियों को धारण करती है, इसलिए वह 'धरित्री' कहलाती है। धरती अन्न-फल का दान कर प्राणिमात्र का भरण-पोषण करती है। वस्तुतः प्राणिमात्र की काया मिट्टी निर्मित है, धरती माँ की चन्दन सदृश धूल में लोट-पोट कर हम बड़े होते हैं।

'माता' शब्द की व्याप्ति यहीं तक सीमित नहीं है। हम भारतीय गौ को भी माता कहते, मानते हैं। जन्मदात्री माँ की तरह गो-माता भी हमें दुग्ध से दृष्ट-पुष्ट बनाती है।

'जल ही जीवन है', यह जल हमें नदियों से मिलता है, इसलिए गंगा नदी, गंगा माता कहलाती है। यमुना, सरस्वती-जैसी नदियों को भी माता का दर्जा प्राप्त है। मातृ-महिमा का इससे बड़ा उदाहरण दूसरा क्या हो सकता है।

माँ सबकी उत्पत्ति और शक्ति की दात्री है। देवी-भागवत में माँ दुर्गा को शक्ति-स्वरूपा कहा गया है वे शक्ति-प्रदात्री हैं- 'या देवी सर्वभुतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।' समस्त सद्गुणों की दात्री-विधात्री लोकमाता दुर्गा ही

है, इसलिए नवरात्र में माँ दुर्गा की पूजा-अर्चना का मंगल विधान है, वे सकल गुण-निधान हैं और लोकमंगल प्रदायिका हैं। यह मातृ-महिमा ही हैं, जिस कारण ये देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती, भवानी लोकमाता के रूप में भारतीय जीवन में प्रतिष्ठित और पूज्य हैं।

अपने देश में कुमारी कन्याओं को मातृशक्ति के रूप में पूजने का प्राचीन विधान है, कुमारी कन्या माता-तुल्य है। लोक जीवन में परायी स्त्री को मातृवत् सम्मान देना मातृमहिमा का ही परिचायक है- मातृवत् परदारेषु।

यहाँ जिस मातृका-पूजा का चलन है, वह मातृ-महिमा का ही सूचक है। एक छन्द-मातृका छन्द भी माँ की महिमा का द्योतक है। पुराण-शास्त्रों और लोक जीवन में माँ प्रतिष्ठित और पूज्य तो हैं ही, फिल्मी गीतों में भी माँ की महिमा का गायन है- 'सब देव-देवियाँ एक ओर, ऐ माँ तू मेरी एक ओर।'

पुराण-शास्त्रों में पुरुष और प्रकृति की चर्चा मिलती है। पुरुष पिता और प्रकृति सबकी माँ है। पुरुष सर्वेश्वर और प्रकृति सर्वेश्वरी है। जड़-जंगम सभी प्रकृति से उत्पन्न हैं। वह सबको जन्म देती पालती-पोसती और अन्त में सबको अपने में समाहित कर लेती है, मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जाता है, प्रकृति शेष रह जाती है, नये सिर से माँ की भूमिका निभाने हेतु। सृष्टि का क्रम जारी रहता है, माँ प्रकृति रह जाती है; नयी सन्तति की उत्पत्ति के लिए।

वस्तुतः माँ ममता की मूर्ति है, और ममत्व ही माँ की महिमा है। ऐसी माँ के लिए ही शास्त्रोक्ति है- 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।' कुपूत, माँ की हत्या भी कर दे, तो माँ के कटे कलेजे से 'खुश रहो

लाल' का ही आशीर्वचन फूटता है। यहाँ पालन-पोषण करनेवाली स्त्री भी माँ कहलाती है, ये सब मूर्त माताएँ हैं, स्पष्ट रूपाकृति वाली।

माँ का एक रूप अमूर्त भी है, और वह है अपनी मातृभाषा। वह भाषा जो माँ की गोद में बैठकर सीखी जाती है। हर क्षेत्र, हर कौम, हर देश की अलग-अलग भाषाएँ हैं; जिनके लिए कहा गया है:-

निज भाषा उन्नति अहै,

सब चिन्तन को मूला

भाषा भी माँ है, जो बोलना सिखाकर सम्पर्क का माध्यम बनती है। यह मातृभाषा ही सन्तति को उत्कर्ष दिलाती है। कविवर जनार्दन प्रसाद द्विवेदी ने एक दोहे में हिन्दी भाषा को माँ मानते हुए उसकी दुःस्थिति का चित्रण किया है-

अपनी माता रो रही, सहती है अपमान  
अपने ही घर में सदा, बनी हुई अनजान।

कवि अशोक 'अंजुम' ने एक दोहे में माँ की महिमा का बखान निम्नवत् किया है-

जगह-जगह तीरथ करो,

फिरो सुबह से शाम

माँ के चरणों-सा नहीं,

दूजा कोई धाम।

कवयित्री अनुराधा की दृष्टि में जन्मदात्री माँ रक्त से सींचने वाली माँ होती है। गर्भस्थ शिशु माँ के रक्त से ही सिंचित होता है, जन्म पाए शिशु के लिए माँ की धमनियों में प्रवाहित रक्त ही उसकी छाती में दूध बनकर उतरता है। शिशु की धमनियों में माँ का रक्त ही दौड़ता है।

कबीर साहब ने गाया है-

दुःख में सुमिरन सब करै,

सुख में करे न कोया।

जो सुख में सुमिरन करै,

दुःख काहे को होया॥

उनका इशारा प्रभु-स्मरण की ओर है, जो परम पुरुष के रूप में सबका पिता है। वह प्रभु भी सुख में सुमिरन करनेवाले को दुःखों से बचाये रखता है। किन्तु माँ तो ऐसी नहीं होती। वह सुख में सुमिरन (स्मरण, याद) न करनेवाली सन्तान पर भी दुःख आया देख द्रवित हो जाती है। सन्तान के लिए हर माँ दुआएँ माँगती है, व्रत उपवास रखती है। बच्चा रोया नहीं कि घर का सार काम-काज छोड़कर माँ दौड़ पड़ती है।

महाकवि सूरदास ने यशोदा मैया का जो चित्र खींचा है, वही माँ का असली रूप है। जन्म देनेवाली माँ से पालन-पोषण करनेवाली माँ का स्थान ऊँचा है। कृष्ण बार-बार यशोदा मैया को आश्वस्त करते हैं- माँ, मैं सदा तुम्हारा ही पूत कहाऊँगा। यह कृष्ण द्वारा माँ को महिमा प्रदान करना ही है।

माँ कौशल्या को जब राम, पिता द्वारा दिए गये वनवास का समाचार सुनाते हैं, तो कौशल्या कहती है, 'पिता से माँ का स्थान ऊँचा है, तुम मेरी आज्ञा का पालन करो अर्थात् वन जाने का विचार त्याग दो। हाँ, अगर माँ कैकेयी का आदेश है तो अवश्य वन को जाओ।' माँ कौशल्या, इस प्रकार, माँ की महिमा की उद्घाटित करती है। गोस्वामीजी ने 'जान बड़ी माता' लिखकर माँ की महिमा का ही बखान किया है।

मानव-सन्तति देव-ऋण, गुरु-ऋण, पितृ-ऋण से भले ही मुक्त हो जाय, माँ से वह कभी उऋण नहीं हो पाता। मातृ-प्रदत्त काया-सन्तति पर माँ का दिया ऋण है, जिसे मरकर भी चुकाया नहीं जा सकता। इसलिए शास्त्र की आज्ञा है- मातृदेवो भव।

सन्तति की सर्व-हितकारिणी माँ सब

देवी-देवताओं से बढ़कर हैं। हालाँकि, कोई माँ पुत्र को अपना ऋणी नहीं मानती, और यही उसकी महत्ता का रहस्य है। इसीलिए विश्व के हर वाङ्मय में मातृ-महिमा का गायन है। माँ का निरादर सर्वत्र वर्जित है। सन्तति का अस्तित्व माँ की देन है, इसे कौन नहीं जानता?

माँ की उग्रवाली किसी अधेड़ अपरिचित औरत को माँ कहकर देखिए, आपको ममता का आँचल मिल जाएगा। ऐसी होती है माँ उसकी महिमा अगम है, और उसका मातृत्व अपार है।

महर्षि अत्रि की अर्द्धांगिनी महादेवी अनसूया ने अपनी मातृत्व-शक्ति से त्रिदेवों को शिशु बनाकर पति के आश्रम में पालने में झुलाया था। माँ की महिमा त्रिदेवों को भी स्वीकार करनी पड़ी थी, जिन्हें वेद-शास्त्र अजन्मा बतलाते हैं।

जब यशोदा मैया के घर शिशुरूप में भगवान् कृष्ण का आगमन हुआ तो भोले शंकर भी माँ यशोदा के घर गोकुल गाँव पधारे थे, उन्हें कृष्ण लीला के दर्शन हेतु माँ यशोदा से मनुहार करना पड़ा था।

परात्पर शक्तियों का धरा पर अवतरण, माँ की सहायता से ही सम्भव हो पाता है। राम को भाइयों सहित धरा पर अवतरण हेतु नृपति दशरथ की तीन पटरानियों को माध्यम बनाना पड़ा था। देव, दनुज, मानव, किन्नर गन्धर्व और चराचर जगत् के प्राणी माँ के सौजन्य से ही जन्म लेते हैं, माँ के आँचल की छाया में ही पलते-बढ़ते हैं। मनुष्येतर प्राणियों- जलचर, थलचर, नभचर, की उत्पत्ति में मादा ही उनके जन्म का हेतु बनती है। सन्तति माँ का वात्सल्य पा धन्य होती है। पशु, पक्षी अपनी जन्मदात्री

का स्नेह-वात्सल्य पाते सर्वत्र देखे जाते हैं। वस्तुतः सृष्टि-विस्तार का हेतु मादा ही बनती है, जो माँ का ही रूप है। नर गौण रहता है।

माँ सन्तति के जीवन की स्रोतस्विनी ही नहीं, स्वयं सन्तति का साकार जीवन है। माँ के बिना जीवन का अस्तित्व में आना असम्भव है, जीवन की कल्पना ही असम्भव है। सन्तति की जीवन-दायिनी माँ, देहरी के अन्दर रहकर, अपने सपूत को अच्छी सीख देकर, सुखद जीवन-यात्रा के लिए तैयार करती है। रुआँसे बेटे के अधरों पर हँसी लाकर उसके सिर पर दुलार से कर फेरती है।

माँ का आशीष अमोघ है। कुन्ती ने अपने पाँचों पुत्रों को महाभारत समर में विजयी होने का आशीर्वाद दिया था। माँ गान्धारी जानती थी कि उसके बेटे अधर्म की राह पर हैं, इसलिए दुर्योधन की लाख याचना पर भी माँ ने उसे विजयश्री का आशीर्वाद नहीं दिया और धर्म की रक्षा की। माँ अधर्मी हो ही नहीं सकती। उसका जीवन तो व्रत-उपवास और संतान की मंगलकामना में ही बीतता है। माँ के कर फेरते ही बेटे में संजीवनी-शक्ति का संचार हो जाता है, सन्तति के म्रियमाण जीवन में उत्साह की लहर दौड़ने लगती है, और वह निर्भय, निडर होकर चल पड़ता है जीवन-पथ पर। माँ का साया सदा उसके साथ होता है। माँ के होने से वह सदा सनाथ रहता है। माँ के बिना तो सन्तान “आगे नाथ न पीछे पगहा” की स्थिति में पहुँच जाता है।

शिवाजी अपनी बुद्धिमती माँ से प्रेरणा पाकर ही वीर शिवाजी बन पाए। पितृहीन पाण्डवों को माँ कुन्ती का आश्रय मिला और वे माँ की प्रेरणा से ही जीवन समर में विजयी हो पाए।



माँ की ममता जवान बेटे में भी शिशु का रूप ही देखती है। माँ, बेटे के संघर्ष और अभाव के दिनों में हर कदम पर साथ देती है, बेटे की हौसला आफजाई करती है। सन्तान भी माँ की छाया में अपने को सुरक्षित समझती है। माँ की जगह कोई दूसरी नारी नहीं ले सकती। पत्नी, बेटी, बहन, बुआ सारे रिश्तेदार माँ के आगे बौने हैं। संघर्ष और अभाव के दिनों में भी हर सन्तान को माँ की याद आती है। माँ का साया सिर पर, तो डर किस बात का। संतान, माँ में भवानी दुर्गा का रूप देखकर निश्चिन्त प्राय रहती है।

माँ की सीख अमूल्य और विकास की विधायिका होती है। कथाकार संजीव को अपनी माँ से जो सीख मिली- 'किसी चीज को देखना हो तो तब देखो जब वह तुमसे दूर जा रही हो। और उसे बिल्कुल साफ-साफ देखना चाहते हो तो तब देखो जब वह दिखाई ही न दे। किन्तु यह विडम्बना है कि व्यावहारिक सीख देनेवाली ऐसी माँ की महिमा का पता तब चलता है, जब माँ नहीं होती, वह परलोक सिधार चुकी होती है। यह भी सच है कि जब माँ हमारे आस-पास नहीं होती है, तभी वह साफ-साफ दिखाई देती है। उसकी महिमा महत्ता का सही अहसास उसके नहीं होने पर ही हो पाता है।

अगर माँ साथ हुई तो मूर्धन्य कथाकार भीष्म साहनी की प्रसिद्ध कहानी 'चीफ की दावत' में चित्रित माँ की तरह माँ कोने में धकेल दी जाती है। वह कोई जीवित प्राणी नहीं, निर्जीव वस्तु हो जाती है, नज़रों से ओट कर दी जाती है, किसी अनुपयोगी वस्तु की तरह। उस खूसट को कोई देख न ले। कमोबेश, यही आज के पारिवारिक सामाजिक जीवन का सच है। माँ शायद आज हाशिए पर है।

गौरव-ग्रन्थ महाभारत में ज्येष्ठ पाण्डु कुमार धर्मराज युधिष्ठिर के एक स्वप्न का प्रसंग वर्णित है। युधिष्ठिर को एक विचित्र सपना आता है- एक घड़ा सात घड़े को भर देता है, वे सात भरे हुए घड़े उस पर खाली हो चुके घड़े को नहीं भर पाते। निद्रा भंग होते ही युधिष्ठिर असमंजस में पड़ जाते हैं। रहस्योद्भेदन हेतु उन्होंने महामुनि व्यास की शरण ली। व्यासदेव ने उन्हें समझाया- तुम्हारे राज्यकाल में ऐसा अघटनीय नहीं घटित होगा। निकटवर्ती भविष्य में ही ऐसा होने वाला है। युग परिवर्तन होनेवाला है। आगत कलियुग में एक माँ सात बेटों को पाल पोसकर बड़ा कर देगी, किन्तु अपनी असहाय माँ का भरण-पोषण सातों बेटे मिलकर भी नहीं कर पाएँगे। स्वप्न का समाधान तो हो गया, किन्तु इस यन्त्रयुग में वह स्वप्न पूरी तरह घटित हो रहा है। आज की सन्तान माँ के प्रति उदासीन होती जा रही है। उसका प्रेम पत्नी, बाल-बच्चों और बहुत हुआ तो चन्द मित्रों तक सिमट कर रह गया है। माँ, सचमुच 'चीफ की दावत वाली माँ' हो गयी है। जबकि अपनी संस्कृति में धात्री, शिशु को गोद में खेलाने वाली को भी माँ का दर्जा प्राप्त है। राम मन्थरा को 'धाई माँ' कहते थे।

माँ के प्रति संतान का यह उपेक्षा-भाव, यह उदासीनता, यह निरपेक्षता वस्तुतः जीवन के मूल की उपेक्षा है। जीवन के मूल में माँ है, अन्य रिश्ते तो शाखा-पत्ते हैं। सन्तान, मूल को छोड़, आज शाखा और पत्तों को सींचती नजर आती है। आज का यान्त्रिक जीवन, वस्तुतः जीवन-निरपेक्ष है; अपने देश की संवैधानिक धर्म-निरपेक्षता की तरह यह निरपेक्ष जीवन समाज एवं राष्ट्र के लिए कितना घातक है, बतलाने की जरूरत नहीं।

यूँ तो माँ की व्याप्ति सर्वत्र है, वह जीवन में है, समाज में है, फिल्मों में है, साहित्य में भी है, किन्तु सर्वत्र वह उपेक्षिता है, पर धर्म के क्षेत्र में जगदम्बा तक पहुँचने की पहली और अन्तिम सीढ़ी के रूप में माँ की मान्यता है।

कथाकार प्रियदर्शन ने अपने प्रथम कहानी संग्रह 'उसके हिस्से का जादू' में अपनी माँ को इस प्रकार याद किया है- 'मेरे भीतर एक दरवाजा बार-बार खुलने को होता है, और बार-बार मैं उसे बंद करना चाहता हूँ। उस दरवाजे के भीतर की दुनियाँ में माँ है। वह बाहर की दुनियाँ छोड़ गयी है। कभी-कभी सोचता हूँ तो लगता है, माँ याद करने की चीज नहीं हैं। वह हमेशा साथ होती है। एक आश्वस्ति-सी, वह इस दुनियाँ में। याद करने से डर लगता है।'

प्रेम भारद्वाज ने अपने एक आलेख में सच ही कहा है- 'माँ एक संबोधन मात्र नहीं है, एक अटूट भरोसा है, अंधेरे में उम्मीद का काँपता दीया।' आलेखकार ने माँ को 'विकल्पहीन दुनियाँ में अन्तिम विकल्प' माना है। सचमुच, 'हर जख्म का मरहम, होती है, हमेशा की आँधी में मजबूत हौसला। यह वैयक्तिक जीवन का यथार्थ है कि "माँ होती है तो आपको यकीन होता है कि आप बड़ी-से-बड़ी जंग जीत लेंगे।' माँ जीवन के लिए अनिवार्य है, 'जब हम कमज़ोर होते हैं, असहाय रहते हैं, तब जरूरत होती है माँ की; माँ के लाड़-प्यार और सहारे की।' लेकिन यह भी उतना ही सच है कि 'अपने पैरों पर खड़े होते ही हम सबसे पहले माँ से दूर होने लगते हैं।'

माँ, जीवन रूपी इमारत की आधार-शिला है, नींव की ईंट है। उस मजबूत नींव पर ही जीवन का सुन्दर भव्य महल निर्मित हो पाता है, किन्तु नींव की वह ईंट नज़रों से सदा के लिए ओझल हो जाती है, उसकी ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है। सन्तान को बुलंदियों तक पहुँचाने में माँ की भूमिका अहम् होती है। किसी शायर ने सही फरमाया है-

बुलंदियों का बड़े-से-बड़ा निशान हुआ,  
उठाया गोद में माँ ने तब आसमान हुआ।

मुनव्वर राजा माँ की अविस्मरणीय तस्वीर खींचते हैं-

इस तरह मेरे गुनाहों को वो धो देती है,  
माँ बहुत गुस्से में होती है तो रो देती है।

उनके लिए

'तेरे दामन में सितारे हैं तो होंगे ए फलक,  
मुझको माँ की मैली ओढ़नी अच्छी लगती है।'

उनकी नज़र में,

वो तो लिखा के लाई किस्मत में जागना,  
माँ कैसे सो सकेगी कि बेटा सफर में है।

माँ, सचमुच बेटे की नींद सोती है, बेटे की नींद जागती है।

अली सरदार जाफरी की पंक्तियों में माँ का स्वरूप उभरा है-

छातियाँ आज मिरी सूख गयी हैं, लेकिन  
आँखें सूखी नहीं हैं अब तक मेरे लाल

मेरे अशकों ही से तू प्यास बुझा ले अपनी।'

भारतीय वाङ्मय में माँ की महत्ता सर्वोपरि है। यहाँ 'मातृवत् परदारेषु' की उच्च और उदात्त भावना है। भाभी माँ समान होती है। और माँ बनती है, माँ बनना ही नारी जीवन की सार्थकता है। सचमुच, 'सब देव-देवियाँ एक ओर, ऐ माँ तू मेरी एक ओर' फिल्मी गीत की यह पंक्ति माँ की महत्ता की प्रकाशिका है।



स्थायी-स्तम्भ

## संस्कृत सीखें

(द्वितीय पाठ)

पिछले अंक से हम संस्कृत भाषा सीखने के लिए पाठमाला दे रहे हैं। इसके अन्तर्गत सबसे पहले शब्दरूपों को कंठस्थ करने का पाठ आरम्भ किया है। पिछले अंक में 10 पुल्लिंग शब्दों के रूप दिये गये हैं। हमें आशा है कि हमारे नियमित पाठक शब्दों का रूप कण्ठस्थ कर चुके होंगे। इस अंक में 10 स्त्रीलिंग शब्दों के रूप दिये जा रहे हैं। ये दश शब्द परम्परा से नायक माने गये हैं। संस्कृत शिक्षण-पद्धति में प्राचीन काल से यह श्लोक प्रचलित है:-

रमा रुचिर्नदी धेनुर्वाग्धीः सरिदनन्तरम्।

क्षुत्प्रावृच्च शरच्चैव दशैताः स्त्रीषु नायकाः॥

विभक्ति एवं वचन का विचार किये बिना सीधे इन शब्दों का रूप कण्ठस्थ कर लेना सबसे उपयुक्त है। ध्यातव्य है कि प्रारम्भिक पाठों में याद करने से पूर्व अन्य किसी भी बात पर ध्यान देने से बाधा उत्पन्न होती है।

**रमा (लक्ष्मी)**- रमा रमे रमाः, रमाम् रमे रमाः, रमया रमाभ्याम् रमाभिः, रमायै रमाभ्यां रमाभ्यः, रमायाः रमाभ्यां रमाभ्यः, रमायाः रमाभ्यां रमाभ्यः, रमायां रमयोः रमासु, हे रमे हे रमे हे रमाः।

**रुचि (पसंद)** - रुचिः रुची रुचयः, रुचिम् रुची रुचीः, रुच्या रुचिभ्याम् रुचिभिः, रुच्यै, रुचये रुचिभ्याम् रुचिभ्यः, रुच्याः, रुचेः रुचिभ्याम् रुचिभ्यः, रुच्याः, रुचेः रुच्योः रुचीनाम्, रुच्याम्, रुचौ रुच्योः रुचिषु, हे रुचे हे रुची हे रुचयः।

**नदी-** नदी नद्यौ नद्यः, नदीम् नद्यौ नदीः, नद्या नदीभ्याम् नदीभिः, नद्यै नदीभ्याम् नदीभ्यः, नद्याः नदीभ्याम् नदीभ्यः, नद्याः नद्योः नदीनाम्, नद्याम् नद्योः नदीषु, हे नदि हे नद्यौ हे नद्यः।

**धेनु (गाय)**- धेनुः धेनू धेनवः, धेनुम् धेनू धेनूः, धेन्वा धेनुभ्याम् धेनुभिः, धेनवे धेनुभ्याम् धेनुभ्यः, धेन्वाः-धेनोः धेनुभ्याम् धेनुभ्यः, धेन्वाः-धेनोः धेन्वोः धेनूनाम्, धेन्वा-धेनौ धेन्वोः धेनुषु, हे धेनो हे धेनू हे धेनवः।

**वाक् (वाणी)**- वाक् वाचौ वाचः, वाचम् वाचौ वाचः, वाचा वाग्भ्याम् वाग्भिः, वाचे वाग्भ्याम् वाग्भ्यः, वाचः वाग्भ्याम् वाग्भ्यः, वाचः वाचोः वाचाम्, वाचि वाचोः वाक्षु, हे वाक्, हे वाचौ, हे वाचः

**धीः (बुद्धि)**- धीः धियौ धियः, धियम् धियौ धियः, धिया धीभ्याम् धीभिः, धियै, धिये धीभ्याम् धीभ्यः, धियाः, धियः धीभ्याम् धीभ्यः, धियः धियोः धीनाम्, धियाम्, धियि धियोः धीषु, हे धीः हे धियौ हे धियः।

**सरित् (नदी)**- सरित् सरितौ सरितः, सरितम् सरितौ सरितः, सरिता सरिद्भ्याम्, सरिद्भिः, सरिते सरिद्भ्याम् सरिद्भ्यः, सरितः सरिद्भ्यात् सरिद्भ्यः, सरितः सरितोः सरिताम्, सरिति सरितोः सरित्सु, हे सरित् हे सरितौ हे सरितः।

**क्षुत् (भूख)**- क्षुत् क्षुधौ क्षुधः, क्षुधम् क्षुधौ क्षुधः, क्षुधा क्षुध्याम् क्षुद्भिः, क्षुधे क्षुध्याम् क्षुध्मः, क्षुधः क्षुध्याम् क्षुध्मः, क्षुधः क्षुधोः क्षुध्याम्, क्षुधि क्षुधोः क्षुत्सु, हे क्षुत् हे क्षुधौ हे क्षुधः,

**प्रावृट् (वर्षा ऋतु)**- प्रावृट् प्रावृषौ प्रावृषः, प्रावृषम् प्रावृषौ प्रावृषः, प्रावृषा प्रावृड्भ्याम् प्रावृड्भिः, प्रावृषे प्रावृड्भ्याम् प्रावृड्भ्यः, प्रावृषः प्रावृड्भ्याम् प्रावृड्भ्यः, प्रावृषः प्रावृषोः प्रावृषाम्, प्रावृषि प्रावृषोः प्रावृट्सु

**शरत् (शरद ऋतु)**- शरद् शरदौ शरदः, शरदम् शरदौ शरदः, शरदा शरद्भ्याम् शरद्भिः, शरदे शरद्भ्याम् शरद्भ्यः, शरदः शरद्भ्याम् शरद्भ्यः, शरदः शरदोः शरदाम्, शरदि शरदोः शरत्सु, हे शरत् हे शरदौ हे शरदः।।



### स्वास्थ्य-चर्चा

स्वास्थ्य का सम्बन्ध सबसे अधिक भोजन से है। जैसा हम भोजन करेंगे, वैसा हमारा स्वास्थ्य रहेगा। गीता में भगवान् कृष्ण ने सतरहवें अध्याय के तीन श्लोकों में हमारे लिए भोज्य पदार्थ की विवेचना की है, जिससे स्पष्ट है कि हमें सात्विक आहार लेना चाहिए, जिससे हमारा मन एवं शरीर अनेक प्रकार की व्याधियों से मुक्त रहेंगे।

**आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।**

**रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ।। १८ ।।**

जो सीधे सच्चे (सात्विक) लोग होते हैं उन्हें ऐसा ही भोजन (खाना-पीना) अच्छा लगता है जिससे आयु, समझ (बुद्धि), हृष्टा-कट्टापन, सुख और चाव बढ़े, जिसमें रस (हरा-भरा तरोताजा किए रखने की शक्ति) हो, चिकनाई हो, जो देर तक पेट में ठहर सके और अच्छे स्वाद वाला हो ।। १८ ।।

**कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।**

**आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।। १९ ।।**

रौवदाव वाले (राजसी) लोगों को ऐसा भोजन अच्छा लगता है जो मिर्च-खटाई वाला, नमकीन, गरम करने वाला, तीखा, रूखा, जलन उपजाने वाला, दुःख देने वाला, रोग और चिन्ता उपजाने वाला हो ।। १९ ।।

**यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।**

**उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।। १० ।।**

आलसी और छोटे (तामसी) लोगों को ऐसा भोजन अच्छा लगता है जो अधपका, बिना रस वाला (सूखा), बुरी गन्ध वाला, वासी, जूठा और कहीं से भी किसी के हाथ का बनाया, लाया और परोसा गया हो ।। १० ।।

## ज्योतिष की दृष्टि से कैंसर का विश्लेषण

डा. राजनाथ झा

गणित-फलित ज्योतिषाचार्य,  
विद्यावारिधि,  
ज्योतिष परामर्शदाता,  
महावीर ज्योतिष मण्डप,  
महावीर मन्दिर, पटना



पाश्चान्त्य-चिन्तन की एक विडम्बना है कि भारत के प्राचीन विज्ञान को भी विज्ञान न कहकर अध्यात्म, धर्म आदि की संज्ञा दे दी जाती है और उसे हर सिरे से नकार दिया जाता है। सोचने की बात है कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण है, यह यदि न्यूटन ने कहा तो विज्ञान कहलायेगा और इसी को संस्कृत भाषा में यदि भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में कहा (आकृष्टशक्तिश्च मही यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्ययं खे॥) तो इसे विज्ञान नहीं कहेंगे। वस्तुतः ज्योतिष प्राचीन भारतीय विज्ञान है, जिसमें हमारे ऋषियों के हजारों वर्षों के सूक्ष्म निरीक्षण के परिणाम कहे गये हैं। हाँ, इन विषयों पर शोध करने की आवश्यकता अवश्य है। रोग के सम्बन्ध में भी आकाशीय पिण्डों के प्रभाव का अध्ययन हुआ है। उन सिद्धान्तों पर फिर से शोध की आवश्यकता अवश्य है। वर्तमान में डा. राजनाथ झा कैंसर रोग पर निरीक्षण विधि से विस्तृत अध्ययन कर रहे हैं। आरम्भिक चरण में शोध के जो परिणाम आये हैं, उन्हें यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। सं.

सम्पूर्ण जातक ग्रन्थ से हमें मानव जीवन में होने वाले तमाम शुभाशुभ फल की जानकारी मिलती है, जिससे मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर फल बतलाकर ज्योतिष शास्त्र की प्रमाणिकता प्रस्तुत करनी है। जातक की कुण्डली से मात्र उनके भूत, भविष्यफल का कथन ही नहीं, अपितु उनके शारीरिक मानसिक रोगों की जानकारी भी हमें मिलती है।

यद्यपि ज्योतिष शास्त्र में लग्नभाव से रोगों का ज्ञान होता है; परन्तु रिपुभाव अर्थात् छठे भाव से विशेष रोगों का तथा शत्रु का विचार किया जाता है। सर्वप्रथम मानव शरीर के किस अंग में कौन सी राशि अवस्थित है, इसकी जानकारी परमावश्यक है। मेष- सिर। वृष- मुख। मिथुन- कंधा। कर्क- हृदय। सिंह- उदर। कन्या- कमर। तुला- पेड़। वृश्चिक- लिंग। धनु- पिंडली तथा मीन राशि का स्थान पैर पर निरूपित किया गया है। भावेशग्रह, राशि जन्य अंगों में रोग उत्पन्न करता है, रिपुभावस्थ ग्रह राशि से इसका विचार किया जाता है।

जातक के जन्माङ्ग चक्र में जब भी कोई अकारक ग्रह छठे भाव के स्वामी या छठे भावस्थ हो जाता है तो अपने बल के अनुसार अपनी दशा अन्तर्दशा में अपने से सम्बन्धित अंग में रोग उत्पन्न करना है। मूलतः रोग जानने के लिए जन्मकुण्डली में इस प्रकार से विचार किया जाता है। कारक भाव, कारक ग्रह, कारक राशि, पापग्रह, छठे भाव तथा छठे भाव में स्थित ग्रह से रोग की गणना की जाती है। कैंसर रोग के बारे में 'जातक-परिजात' में कहा गया है कि-

क्षीणे मन्दगृहोदये हिमकरे पापग्रहैरन्विते  
रन्ध्रारातिगतेऽथवा पवनकृद्गुल्मादिरोगं वदेत्।  
चन्द्रे पार्ष्ण्यञ्चरान्तरस्तगे मन्दे मन्दस्थानगे  
जातो विद्रधिजन्यशीषजनितैः सन्तप्तदेहो भवेत्॥

जातक के जन्मकुण्डली में चन्द्रमा पापग्रह अर्थात् सूर्य, मंगल, शनि, राहु अथवा केतु में से किसी से युक्त हो। षष्ठ, अष्टम भाव में भी यदि क्षीण चन्द्रमा इन पाप ग्रहों से युक्त हो तो इन दोनों योगों में वायु से उत्पन्न रोग वायुशूल, वातरोग, टिटनेश आदि रोग होते हैं। चन्द्रमा यदि पापग्रहों के बीच में हो व सप्तमस्थान में शनि हो तो कैंसर घाव, अल्सर रोग होता है। ये रोग शरीर के किसी भी अंग में होते हैं।

जब जन्माङ्गचक्र, राशिचक्र में शरीर के अंग विशेष शुक्र तथा चर्मरोग के कारक ग्रह बुध, मज्जा के कारक ग्रह मंगल, रस रक्त के कारक ग्रह चन्द्रमा, पापग्रह शनि एवं राहु से पापाक्रान्त होते हैं, तो वह अंग में उस पापी ग्रह के दशाकाल में रस रक्त, मज्जा में विकृति उत्पन्न कर दर्द के कारक ग्रह शनि और राहु कैंसर जैसा रोग उत्पन्न करते हैं। चूंकि रस, रक्त, मज्जा को अति मन्दगामी ग्रह शनि शनैः शनैः प्रभावित कर घाव को सड़ाता रहता है, इसलिए जातक को इसकी जानकारी प्रारम्भ में प्राप्त नहीं होती और अन्त में जब इसका कीटाणु पूर्ण रूप से उस अंग को सड़ा देता है, तो रोगी की अकाल मृत्यु हो जाती है। कैंसर रोग देखने के लिए मुख्यतया छठे भाव पर विचार करना चाहिए कैंसर रोग के कारक ग्रह, सूर्य, केतु, मंगल, शनि एवं राहु ग्रह होते हैं।

**पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।**

**तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः॥**

स्मृतिरत्नाकर ग्रन्थ में कहा गया है कि पूर्वजन्म में किये गये पाप इस जन्म में रोग के रूप में पीड़ा देते हैं। अतः जप, तप, हवन, दान तथा पूजा-पाठ से उनकी शान्ति करनी चाहिए।

अथर्ववेद में कैंसर रोग की शान्ति के लिए बहुत व्यापक रूप से हमारे पूर्वाचार्यों ने व्यवस्था कर रखी है। रोगग्रस्त जातक इस पद्धति के द्वारा भी यदि शान्ति करते हैं तो अवश्य लाभ होगा।

इन शास्त्रीय विवेचनों के आलोक में मैंने प्रथम चरण में लगभग 40 कैंसरग्रस्त मरीजों की जन्मकुण्डली का अध्ययन किया तो सामान्य रूप से निम्नलिखित स्थितियाँ सामने आयीं:-

शनि सातवें भाव में बैठकर चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि से देखे।

अन्य किसी भी भाव से चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि पड़े।

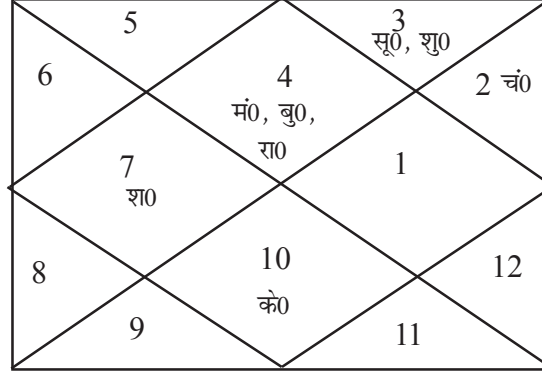
चन्द्रमा, लग्नेश एवं षष्ठेश ये तीनों त्रिक में हों।

छठे या आठवें भाव के मंगल या शनि हो।

ये सामान्य योग बनते हैं, लेकिन इन पर आगे विशेष अध्ययन की आवश्यकता है, सैकड़ों हजारों की संख्या में कैंसरग्रस्त मरीजों की कुण्डली के आधार पर सामान्य ग्रहस्थिति को सूत्र रूप में निकाला जा सकता है, जिससे जन्म के तुरत बाद कैंसर की सम्भावना का पता ग्रहस्थिति के आधार पर पता लगाया जा सके और औषधि अथवा अध्यात्म के द्वारा भावी कैंसर से बचा जा सके।

कैंसरग्रस्त जातक की कुण्डली का प्रदर्शन:-

जीभ का कारक बुध प्रथम भाव में मंगल, शनि एवं राहु से पापाक्रान्त हैं, सप्तमेश शनि की दशा में जातक जीभ के कैंसर से मारा गया।

कैंसर रोग से बचाव के उपाय:-

1. जन्मकुण्डली में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए लग्नभाव का विशिष्ट महत्त्व है; अतः लग्नेश को रत्न द्वारा बली करें।
2. प्रभावी पापग्रह का जप, दान, पूजन कर शान्ति करें।
3. महामृत्युञ्ज जप करें।
4. चन्द्रमा, बुध, मंगल, शुक्र के लिए कवच, पन्ना धारण करें या इनकी पूजा शान्ति करें।
5. पन्ना धारण करें।
6. प्रभावी पापग्रह जो हों, उनके शत्रु का या शनि, राहु के लिए सूर्य का रत्न धारण कर बली करें।
7. स्नान करने के जल में सर्वोषधी डालकर स्नान करें।
8. माथे पर आँवले का रस डालकर 30 मिनट रखें उसके पश्चात् स्नान करें।
9. हनुमान् साठिका, पंचमुखी हनुमत्-कवच, संकटमोचन-स्तोत्र आदि का संकल्प पूर्वक पाठ करें। इससे प्रचुर लाभ होगा।
10. मोती धारण करें।

इन उपायों से कैंसर रोग में लाभ मिलता है।





## मन्दिर समाचार-परिक्रमा

### जागरूकता से ही फेफड़े के कैंसर से मुक्ति

**फुलवारीशरीफ (पटना)** फेफड़े के कैंसर पर महावीर कैंसर संस्थान में एक जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किया गया।

कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए संस्थान की कार्यकारी निदेशक **डा० मनीषा सिंह** ने कहा कि फेफड़े का कैंसर मूल रूप से धूम्रपान एवं तम्बाकू सेवन से होते देखा जा रहा है। डा० सिंह ने कहा कि 86 से 90 प्रतिशत फेफड़े का कैंसर बीड़ी-सिगरेट पीने से होता है। जो बीड़ी-सिगरेट नहीं पीते हैं किन्तु, पीने वालों के संगत में रहते हैं उन्हें भी फेफड़े का कैंसर होने की संभावना रहती है।



उन्होंने बताया कि तम्बाकू में 400 प्रकार के रसायन पाये जाते हैं जिनमें से 40 प्रकार के रसायन ऐसे होते हैं जिनका सीधा संबंध कैंसर पैदा करने से होता है। डा० सिंह ने बताया कि पृथ्वी से एक प्रकार की गैस का रिसाव होता रहता है। उस गैस को **रेडॉन गैस** कहते हैं। यह गैस सिगरेट पीनेवालों को खासतौर से अपनी गिरपट में ले लेता है।

डा० सिंह ने बताया कि जिनके परिवार में कैंसर होने का इतिहास हो, जिन्हें टी.बी. हो अथवा कभी हुआ हो, रसायनिक एवं एस्बेस्टस कारखाने में काम करनेवाले लोगों को खासतौर से सावधान रहना चाहिये। डीजल के धुँएँ एवं प्रदूषित वातावरण में रहने वाले लोगों को सिगरेट-बीड़ी से विशेष तौर से परहेज करना चाहिये।

कार्यक्रम को संस्थान के रेडियोथेरेपी विभागाध्यक्ष **डा० विनीता त्रिवेदी**, सर्जरी के विभागाध्यक्ष **डा० बी० बी० पाण्डेय**, अपर निदेशक **श्री आर० लाल** ने भी सम्बोधित किया।

कार्यक्रम में बड़ी संख्या में संस्थान में चिकित्सा लाभ ले रहे मरीजों के परिजनों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम की उनलोगों ने सराहना की और कहा कि इस प्रकार के कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में आयोजित करने की आवश्यकता है क्योंकि अनभिज्ञता के कारण लोग कैंसर रोग की गिरपट में आ जाते हैं।

